સુંદર વાતો

ગિજુભાઈ



સાહિત્ય મંદિર : અમદાવાદ

१

विद्यापीठकी स्थापना

[गूजरात महाविद्यालयकी स्थापनाके समय ता० १५–११–१९२० गो दिया गया भाषण।]

अपनी जिन्दगीमें मैंने अनेक काम किये हैं। उनमें से बहुतसे ाके लिए मैं अपने मनमें गर्वका भी अनुभव करता हूँ। कुछ के लिए मुझे पछतावा भी होता है। उनमें से बहुतसे बड़ी ज़िम्मेदारीके काम थे। लेकिन इस समय मैं थोड़ी भी अतिशयोक्तिके बिना कहना चाहता हूँ कि मैंने ऐसा एक भी काम नहीं किया, जिसके साथ आज किये जानेवाले इस कामकी तुलना की जा सके। इस काममें मुझे भारी जोखिम मालूम होती है। उसका कारण यह नहीं है कि इससे जनताको नुक़सान होगा; परन्तु जिस बातका मेरे मनमें दुःख बना रहता है या जिस बातका मैं अपने मनमें मुक़ाबला कर रहा हूँ वह यह है कि मैं जो काम करने जा रहा हूँ उसके लिए मुझमें योग्यता नहीं है। ऐसा मैं नम्रता दिखानेके लिए नहीं कह रहा हूँ, लेकिन मेरी आत्मा जो कहती है वही मैं आपके सामने रख रहा हूँ। अगर मुझे इसका पता होता कि इस समय जो काम करना है वह शिक्षाके सच्चे अर्थके आधार पर करना है, तो मुझे आपके सामने यह प्रस्तावना नहीं रखनी पड़ती। इस महाविद्यालयकी स्थापनाका हेतु केवल विद्यादान देना नहीं है, परन्तु गुज़ारेका साधन जुटा देना भी है। और उसके लिए जब मैं इस विद्यालयकी तुलना गुजरात कॉलेज वग़ैराके साथ करता हूँ तब मैं चकरा जाता हूँ।

ईंट-चूनेकी तुलना

इसमें भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है। कहाँ तो गुजरात कॉलेज और उसके जैसे दूसरे कॉलेज और कहाँ हमारा यह छोटासा महाविद्यालय? मेरी दृष्टिमें तो यह महान ही है। लेकिन मुझे डर है कि आपकी दृष्टिमें हिन्दुस्तानके दूसरे कॉलेजोंके सामने यह महाविद्यालय अणुविद्यालय जैसा लगता होगा। इस विद्यालयका विचार करने प आपके मनमें ईंट और चूनेकी तुलना चलती होगी। ईंट और च तो गुजरात कॉलेजमें ही मुझे ज्यादा दिखाई देता है। ट्रेनमें आते मैं यही सोच रहा था कि आपके सामने मैं ऐसा कौनसा विचा जिससे इस तरहकी ईंट-चूनेकी तुलनाको मैं आपके मनसे निकाल सकूँ। यह बात मुझे खटक रही है कि ऐसा विचार मुझे अभी तक नहीं सूझा है। ऐसा कठिन अवसर मैंने अपने लिए इससे पहले कभी खड़ा नहीं किया था। इस समय मैं अनायास इस स्थितिमें आ फँसा हूँ। मेरे हृदयमें जो बात सिद्ध है उसे मैं आपके सामने उसी तरह सिद्ध नहीं कर सकता। जिन्हें आप ख़ामियाँ मानेंगे वे सचमुच ख़ामियाँ नहीं हैं, यह मैं कैसे साबित करूँ? उन ख़ामियोंको सरल भावसे आपके सामने रख कर भाई किशोरलाल मशरूवाला (महामात्र) ने मेरा काम आसान बना दिया है। उन ख़ामियोंके बावजूद आप ऐसा मानें कि यह कार्य महान है। इसके बारेमें जैसी श्रद्धा मुझमें है वैसी ही श्रद्धा ईश्वर आपमें भी पैदा करे। मैं ख़ुद यह श्रद्धा आपके भीतर पैदा नहीं कर सकता। मुझमें इतनी तपस्या नहीं है। मुझे अपनी यह कमज़ोरी क़बूल करनी चाहिये। मैंने शिक्षाके क्षेत्रमें ऐसा कार्य नहीं किया, जिससे मैं आपको बता सकूँ कि यह कार्य महानसे महान है। हिन्दुस्तानकी आजकी हालतोंमें हम जो कार्य कर रहे हैं वही शोभा देनेवाला है। मकानोंकी तुलना क्या की जाय?

कसौटीका पत्थर

आज तो इस धरतीका एक इंच भी हमारा नहीं है। सब कुछ सरकारी है। यह ज़मीन, ये झाड़, सब कुछ सरकारी हैं। हमारा शरीर भी सरकारी है; और हमारी आत्मा भी हमारी अपनी है या नहीं, इसके बारेमें आज मुझे शंका हो रही है। ऐसी दयावनी स्थितिमें हम महाविद्यालयके लिए अच्छे अच्छे मकान क्यों खोजें? विद्वानोंको खोजनेमें लगे रहें तो हमारा काम कैसे चलेगा? कोई अपढ़से अपढ़ और अनगढ़ आदमी भी आकर कहे और हमें समझा सके कि हमारी आत्मा शुष्क और नीरस हो गई है, हमारा देश तेज और ज्ञानसे हीन हो गया है, तो ऐसे आदमीको मैं महाविद्यालयके आचार्यका पद दे दूँगा। मेरा यह विश्वास नहीं है कि आप किसी भरवाड़ या अहीरको आचार्यका पद देनेको तैयार होंगे। इसलिए हमें भाई गिदवाणीको खोजना पड़ा। मैं उनकी उपाधि या डिग्री पर मोहित नहीं हूँ। आप उनकी डिग्रीके सिवा और किसी रूपमें उन्हें पहचानते नहीं होंगे। लेकिन इस महाविद्यालयकी कसौटीके लिए आप दूसरा ही माप रखें; मैं चाहता हूँ कि इनकी परख करनेके लिए आप कोई दूसरा ही पत्थर खोजें। सामान्य पत्थर पर अगर आप इनकी कसौटी करेंगे, तो आपको ऊपरसे ये पीतल मालूम पड़ेंगे। परन्तु चरित्रकी कसौटी पर आप इन्हें कसेंगे, तो आपको ये पीतल नहीं बल्कि सोना मालूम होंगे।

यहाँ विद्याके कार्यके लिए जो संगम हुआ है वह तीर्थके समान है। यहाँ चरित्रवान पुरुष इकट्ठा हुए हैं। यहाँ सुन्दर सिंधियों, सुन्दर महाराष्ट्रीयों और सुन्दर गुजरातियोंका संगम हुआ है। ऐसा संगम हम कहाँ प्राप्त कर सकते हैं?

यहाँ जो भाई और बहनें आई हैं उनसे मैं पहले एक प्रार्थना करूँगा। आप इस महाविद्यालयकी स्थापनाके साक्षी हैं। आपमें से किसीको यह स्थापना सिर्फ़ तमाशा लगती हो तो ऐसे लोगोंके अंतःकरणसे मैं अपील करना चाहता हूँ और उनसे कहना चाहता हूँ कि आप इस

स्थापनामें भाग न लें। यहाँ आप अपने आशीर्वाद देनेके लिए ही बैठें। आपका आशीर्वाद मिलनेसे यह महाविद्यालय महान संस्थाकी ख्याति प्राप्त करेगा। लेकिन आपका आशीर्वाद सिर्फ़ मुँहका ही नहीं होना चाहिये, आप हृदयसे अपना आशीर्वाद दें। और हृदयका आशीर्वाद तो आप इस महाविद्यालयको अपने लड़के और लड़कियाँ सौंप कर ही दे सकते हैं। हिन्दुस्तानमें पैसा देनेकी शक्ति तो बहुत है। पैसेके बिना कोई प्रगति रुकती नहीं। प्रगति रुकती है मनुष्यके अभावसे, अध्यापकों या आचार्यके अभावसे, या आचार्यके होने पर भी उसके शिष्योंके — यानी सिपाहियोंके अभावसे। मेरा विश्वास है कि जहाँ नेता या सरदार योग्य होते हैं वहाँ सिपाही तो मिल ही जाते हैं। बढ़ईके औज़ार कितने ही भोथरे हों तो भी वह उनके साथ झगड़ा नहीं करता, वह तो भोथरेसे भोथरे औज़ारोंसे भी अच्छी तरह काम लेता है। इसी तरह नेता भी सच्चा कारीगर होगा तो जैसी चीज़ उसे मिली होगी उसीमें से, देशकी मिट्टीमें से सोना पैदा कर सकेगा। आचार्यसे मेरी यही प्रार्थना है।

चरित्रका चमत्कार

इस महाविद्यालयमें दाखिल होनेमें आचार्यकी और अध्यापकोंकी एक ही भावना है; आप विद्याका नहीं परन्तु चरित्रका चमत्कार दिखाकर स्वतंत्रता दिलानेवाले हैं। सरकारकी तेज़ तलवारका तलवारसे मुक़ाबला करके नहीं, लेकिन सरकारकी अशांतिको जन्म देनेवाली राक्षसी प्रवृत्तिका हमारी शांतिमय दैवी प्रवृत्तिसे — भले वह अपूर्ण हो तो भी — मुक़ाबला करके आपको यह काम करना है। इस समय हमें स्वतंत्रताका बीज बोकर उसे पानी पिलाना है और उसमें से स्वराज्यका सुन्दर वृक्ष खड़ा करना है। इस चरित्रसे शुद्ध दैवी बलका ही विकास होगा। जब तक आचार्य और अध्यापक इस एक ही दृष्टिको सामने रखकर काम करते रहेंगे तब तक हमें जरा भी कलंक नहीं लगेगा। जो मेरी अपनी श्रद्धा है वही ईश्वरकी कृपासे

आप — आचार्य और अध्यापकोंमें भी सच्ची साबित हो। अगर मुझमें यह अटल श्रद्धा न होती तो मैं, निरक्षर आदमी, इस कुलपतिके पवित्र स्थानको कभी स्वीकार नहीं करता। इसी कामके लिए मैं जीने और मरनेको तैयार हूँ। जिस तरह इस कामके लिए मरनेको ही मैं जीना समझता हूँ वैसे आप भी समझते हैं, यह जानकर ही मैं आपके साथ रहता हूँ; और इसीलिए मैंने यह महान पद धारण किया है।

सच्ची स्थितिका दर्पण

अगर आचार्य और अध्यापक अपना फ़र्ज़ अदा करें, तो विद्यार्थियोंसे मैं क्या कहूँ? विद्यार्थियों पर दोष लगानेका नीच काम मैं नहीं करूँगा। विद्यार्थी तो परिस्थितिके दर्पण हैं। उनमें न तो दंभ होता है, न द्वेष होता है और न ढोंग होता है। वे जैसे हैं ठीक वैसे ही अपनेको दिखाते हैं। अगर उनके भीतर मेहनत नहीं है, सत्य और ब्रह्मचर्य नहीं है, अस्तेय और अपरिग्रह नहीं है, अहिंसा नहीं है — तो यह उनका दोष नहीं। दोष उनके माँ-बापका है, अध्यापकोंका है, आचार्यका है, राजाका है। लेकिन इसमें राजाका भी दोष मैं क्यों निकालूँ? कल ही मैंने बंबईमें विद्यार्थियोंसे कहा था कि जिस तरह 'यथा राजा तथा प्रजा' वचन सच्चा है; उसी तरह 'यथा प्रजा तथा राजा' वचन भी सच्चा है। बल्कि यह दूसरा वचन ही सच्चा कहा जायगा। प्रजाका दोष पहला है। प्रजाके दोष ही विद्यार्थियोंमें आये हैं। और इसीलिए विद्यार्थियोंमें वे साफ़ देखे जा सकते हैं। इसलिए हमें, माता-पिताको, आचार्यको और अध्यापकोंको ये दोष दूर करनेके लिए जो भी करना ठीक हो करना चाहिये।

किरायेकी संस्कृति

हिन्दुस्तानका हरएक घर विद्यापीठ है — महाविद्यालय है; माता-पिता आचार्य हैं। माता-पिताने आचार्यका काम छोड़कर अपना फ़र्ज़ छोड़ दिया है। विदेशी संस्कृतिको हम पहचान नहीं सके, उसके गुणों

और दोषोंको हम माप नहीं सके। विदेशी संस्कृतिको हमने किराये पर लिया है। लेकिन किराया तो हम कुछ देते नहीं, इसलिए उसे हमने चुरा लिया है। ऐसी चुराई हुई संस्कृतिसे हिन्दुस्तान ऊँचा कैसे उठ सकता है?

इस महाविद्यालयकी स्थापना हम विद्याकी दृष्टिसे नहीं, लेकिन राष्ट्रकी दृष्टिसे कर रहे हैं, विद्यार्थियोंको बलवान और चरित्रवान बनानेके लिए कर रहे हैं। मैं चारों तरफ़ यह बात कह रहा हूँ कि जितनी कामयाबी हमें विद्यार्थियोंमें मिलेगी उसी हद तक हम हिन्दुस्तानके स्वराज्यके लायक़ बन सकेंगे। स्वराज्यकी स्थापना हमारे देशमें और किसी तरह नहीं हो सकेगी। ऐसे विद्यालयोंको कामयाब बनानेके लिए हम अपना जितना पैसा और चरित्र खर्च कर सकें उतना थोड़ा है।

यह समय बोलनेका नहीं, काम करनेका है। अपनी बातको जिन शब्दोंमें मुझे रखते बना उन शब्दोंमें मैंने आपके सामने उसे रख दिया है। आपसे मुझे जो कुछ माँगना था वह मैंने माँग लिया है। अब मैं महाविद्यालयमें अभ्यास करनेवाले विद्यार्थियोंसे भी कुछ माँगता हूँ। इसमें कोई शंका नहीं कि उनके पास हिम्मत है। जो लोग महाविद्यालयमें दाखिल हो चुके हैं, उन्हें मैं विद्यार्थी नहीं मानूँगा; इसलिए मैं उन्हें ज़िम्मेदारीसे मुक्त नहीं समझूँगा। जिन विद्यार्थियोंने यहाँ नाम लिखवाये हैं, वे तो आधे शिक्षक ही माने जायेंगे। उन्होंने महाविद्यालयकी नींव डाली है। उनकी वजहसे ही यह महाविद्यालय शुरू हुआ है। वे अगर दाखिल न हुए होते, तो यह महाविद्यालय खड़ा न हो सका होता। इसलिए विद्यार्थियोंकी भी पूरी पूरी ज़िम्मेदारी है। तुम इस काममें पूरे साझेदार हो। अगर तुम अपना हिस्सा पूरी तरह अदा न करो, तो शिक्षक कितने ही प्रयत्न क्यों न करें वे सफल नहीं होंगे — या पूरी तरह तो सफल नहीं ही होंगे। जिन विद्यार्थियोंने अपने स्कूल-कॉलेज छोड़े हैं, वे क्या समझ कर यहाँ आये हैं, उन्हें यहाँ क्या मिलेगा, यह उन्हें जान लेना चाहिये। आज़ादीकी यह भयंकर

लड़ाई कितने ही समय तक क्यों न चले, ईश्वर इस बीच विद्यार्थियोंको अपना काम करते रहनेकी पूरी ताक़त दे। अगर ऐसा हुआ तो मुझे विश्वास है कि मुट्ठीभर विद्यार्थियोंके रहते भी यह महाविद्यालय चमक उठेगा और सारे हिन्दुस्तानमें आदर्श विद्यालय बन जायगा।

ऋषिका कार्य

इसका कारण न तो गुजरातका धन है, और न गुजरातकी विद्या है। इसका कारण यह है कि असहयोगके जन्मका स्थान गुजरात है; असहयोगका पौधा गुजरातमें रोपा गया है; उसे पानी भी गुजरातमें पिलाया गया है; और उसके लिए तपस्या भी गुजरातमें हुई है। आप लोग यह न मानना कि यह सब झूठा अभिमान करनेवाला आदमी कहता है, आप यह भी न मानना कि यह सारी तपस्या मैंने ही की है या कि यह पौधा मैंने ही रोपा है। मैंने तो सिर्फ़ असहयोगका मंत्र दिया है; एक बनियेका लड़का अगर कर सकता हो, तो मैंने एक ऋषिका कार्य किया है।

श्रद्धाकी ताक़त

इससे ज्यादा मैंने कुछ नहीं किया। असहयोगकी जड़ें मेरे साथियोंने डाली हैं। उनकी श्रद्धा मुझसे भी अधिक थी, इसीलिए यह काम हुआ है। मेरा दावा है कि मेरा ज्ञान अनुभवसे मिला हुआ ज्ञान है। स्वर्गके देवता आकर मुझे समझायें तो भी मेरी श्रद्धा डिगेगी नहीं। अपनी इन आँखोंसे जैसे मैं सामनेके पेड़ोंको देखता हूँ वैसे ही मैं साफ़ देख सकता हूँ कि हिन्दुस्तानकी उन्नति शांतिमय असहयोगसे ही होनेवाली है। लेकिन मेरे साथियोंके बारेमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। उन्होंने दलीलसे, विवेकसे और श्रद्धासे यह माना है कि शांतिमय असहयोगसे ही हिन्दुस्तानकी उन्नति हो सकेगी।

हिन्दुस्तानमें या दुनियामें और भी कहीं कोई आदमी अपने ही अनुभवसे काम नहीं करता। कुछ लोगोंको अनुभव मिलता है, उसके बाद दूसरे लोग श्रद्धासे उस कामको करते हैं।

मेरे साथियोंने असहयोगकी बुनियाद डाली है। उनमें बहुतसे गुजराती हैं, महाराष्ट्री भी हैं; लेकिन ये महाराष्ट्री तो यहाँ गुजरातमें आकर आधे, पौने या सवाये गुजराती ही बन गये हैं। उनके ज़रिये असहयोगका यह हथियार उजला और चमकीला बना है। इसका पूरा चमत्कार, पूरी करामात अभी तक हमने देखी नहीं है। जिसके लिए छोटी छोटी लड़कियोंने अपने हाथोंकी चूड़ियाँ निकाल कर मुझे दे दी हैं, उस कार्यका चमत्कार आप सब छह माहके भीतर अधिक देखेंगे। लेकिन उसकी जड़ — उसकी साकार मूर्ति — यह महाविद्यालय है। हिन्दू मूर्तिकी पूजा करनेवाले हैं; और इसके लिए हमें अभिमान है। इस मूर्तिके अलग अलग अंग हैं। उनमें कुलपति मैं खुद हूँ; अध्यापक, आचार्य और विद्यार्थी उसके दूसरे अंग हैं। मैं खुद तो बूढ़ा हूँ, पका हुआ पत्ता हूँ। दूसरे कामोंमें फँसा हुआ हूँ। मेरे जैसा पका हुआ पत्ता अगर झड़ जाय तो उससे पेड़को कोई आँच नहीं आयेगी। आचार्य और अध्यापक भी इस पेड़के पत्ते ही हैं, हालाँकि वे अभी कोमल, मुलायम पत्ते हैं। कुछ समयके बाद वे भी पके पत्ते बनकर शायद झड़ जायेंगे। लेकिन विद्यार्थी इस सुन्दर पेड़की डालियाँ हैं और इन डालियोंसे भविष्यमें आचार्यों और अध्यापकोंके रूपमें पत्ते फूटनेवाले हैं।

प्रह्लादके जैसी आग जलाओ

विद्यार्थियोंसे मेरी विनती है कि जितनी श्रद्धा तुम्हारी मुझ पर है उतनी ही श्रद्धा तुम अपने आचार्य और अध्यापकों पर रखना। लेकिन अगर तुम अपने आचार्य या अध्यापकोंको निर्बल, कमज़ोर पाओ, तो प्रह्लादके जैसी आग पैदा करके आचार्य और इन अध्यापकोंको तुम भस्म कर देना और अपना काम आगे चलाना। ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है। और यही विद्यार्थियोंको मेरा आशीर्वाद है।

अंतमें मैं भगवानसे प्रार्थना करता हूँ और इस प्रार्थनामें आप सबकी सम्मति माँगता हूँ। आप सब मेरी इस प्रार्थनामें शुद्ध मनसे

शामिल हों। हे ईश्वर, इस महाविद्यालयको तू ऐसा बना कि इसके भीतरसे हमें वह आज़ादी मिले, जिसका हम रात और दिन जप करते हैं; और उस आज़ादीसे केवल हिन्दुस्तान ही नहीं परन्तु सारा संसार — जिसमें हिन्दुस्तान एक बूँद भर है — सुखी हो!

२

महाविद्यालयके विद्यार्थियोंसे

[ता० १२–६–१९२४ को गूजरात महाविद्यालयके नये सत्रके आरंभके अवसर पर सत्याग्रह आश्रममें इकट्ठे हुए महाविद्यालयके विद्यार्थियों और अध्यापकोंके सामने दिया गया भाषण।]

आज सुबह मेरे सामने तीन पत्र पढ़नेके लिए पड़े थे। एक पत्र कहता है कि मुझे विद्यापीठको जला डालना चाहिये। विद्यापीठने आज तक एक भी अच्छा काम नहीं किया। पत्रका लेखक विद्यापीठमें पढ़ा हुआ है। दूसरा पत्र कहता है कि विद्यापीठके विद्यार्थी मौजशौक़में डूबे हुए हैं, वे तरह तरहकी स्वादिष्ट चीज़ें खाते हैं। विद्यापीठमें विद्यार्थी सादगीसे रहते होंगे, वहाँ उनका चरित्र-बल बढ़ता होगा, ऐसा मानकर ही मैंने अपने लड़केको वहाँ भेजा है। अब भला मैं क्या करूँ? तीसरा पत्र मद्राससे आया है। उसमें लिखा है कि आजका मेरा भाषण ऐसा होना चाहिये, जिससे सारे हिन्दुस्तानको मार्गदर्शन मिले।

अब मैं क्या करूँ? तीनोंमें से मैं कौनसी बात करूँ? मैं इनमें से एक भी बात नहीं करना चाहता। जिस विद्यापीठकी स्थापनामें मेरा कुछ भी हिस्सा हो, उसे मैं कैसे जलाऊँ? एक अंग्रेज़ चित्रकारने एक क़िस्सा लिखा है। एक बार विनोदके ख़ातिर अपना एक चित्र बाज़ारमें टँगवा कर उसने लिखा कि चित्रमें जिसे जहाँ कोई दोष मालूम हो वहाँ वह निशानी कर दे। दूसरे दिन चित्र पर जरासी भी

जगह खाली नहीं रही। लेकिन चित्रकारने कहा : 'जब तक मुझे खुद इस चित्रसे संतोष है तब तक मैं इसे कभी नहीं जलाऊँगा।'

मुझे आज सबेरे ही वह चित्रकार याद आया और उसकी दृष्टि मुझे ठीक लगी। दोष खोजने बैठें तो उनका कोई पार नहीं आयेगा। ईश्वरने मनुष्यमें मोह जैसी चीज़ पैदा कर दी है। इस मोहके वश हो कर हम अपना काम करते रहते हैं। आप लोग तो इन तीनों बातोंमें से जो उत्तम हो उसे ले लें। उस तीखी टीका करनेवाले लेखकने लिखा है कि न तो विद्यापीठके विद्यार्थियोंमें कोई दम है, न अध्यापकोंमें। वह चाहता है कि मैं उसका पत्र 'नवजीवन' में छापूँ और उस पर टीका करूँ। लेकिन न तो मैं वह पत्र 'नवजीवन' में छापूँगा और न उस पर कोई टीका करूँगा। विद्यार्थियोंमें सादगी न होनेका जो इलज़ाम लगाया गया है, उसके बारेमें तुम्हें समझ लेना चाहिये। मद्रासी मित्रको तो मैं सँभाल लूँगा। और अगर मेरे भाषणकी रिपोर्ट कोई न ले तो वह आसानीसे यह मान लेगा कि मैंने सचमुच कोई महत्त्वका भाषण किया होगा!

यह तो प्रस्तावना हुई। मुझे आपसे जो कुछ कहना है उस पर मैंने विचार तो कर ही लिया है। विचार नहीं किया ऐसा नहीं कहूँगा, क्योंकि मुझे अपनी झूठी निन्दा करनेकी आदत नहीं है। दो बरस तक यरवडा आश्रमकी शांतिमें विचार करनेसे मेरे पहलेके विचार ज़्यादा मज़बूत हो गये हैं। जो चीज़ मैंने हिन्दुस्तानके सामने रखी है, उसके लिए मुझे ज़रासा भी पछतावा नहीं है। हमने गुजरातमें विद्यापीठकी स्थापना करके महाविद्यालय खोला, लेकिन उसमें सिंधियों और दक्षिणियोंको भरती किया और गुजरातियोंके लिए स्थान नहीं रखा, इसके लिए भी मेरे मनमें कोई पछतावा नहीं होता। गुजरातका यह धर्म है कि दक्षिण और सिंधसे जो कुछ भी अच्छा मिले उसका संग्रह करे। कृपालानी अगर खुदको बिहारी मानते हों, तो हमें उन्हें बिहारी मान लेना चाहिये। उन्हें गुजरातसे भी कुछ लेने जैसा मिलेगा। बिहारमें

अगर वे जुलाहा थे तो गुजरातमें वे कतवैया और पिंजारा बनेंगे और फिर कहेंगे कि मैं जितना बिहारी हूँ उतना ही गुजराती हूँ। लेकिन ऐसी हालत पैदा करना आपके और मेरे हाथमें है। वे सिंधसे आये हैं इसलिए हमारे मेहमान हैं। गुजरातियोंको तो हम गाली भी दे दें। लेकिन उन्हें हमने अपनी ग़रजसे विद्यापीठमें रखा है। इसलिए वे जो कुछ देंगे वह तो हमें लेना ही है। इसमें गुजरात कुछ खोयेगा नहीं बल्कि कमायेगा। मेरा बस चले तो मैं महाविद्यालयमें एक भी गुजरातीको न रखकर उसे सिंधियों और दक्षिणियोंसे भर दूं; और सबसे कहूँ कि आप काका और मामा बन जायें। अगर हमें सभी काका और मामा मिल जायें, तो फिर और क्या चाहिये?

हमने विद्यापीठकी स्थापना क्यों की है? असहयोगके लिए। यह असहयोग किसके साथ किया जाय? क्या सरकारी कॉलेजोंके विद्यार्थियों और अध्यापकोंके साथ किया जाय? नहीं, उनके ख़िलाफ़ हमारा बिलकुल असहयोग नहीं है। हमारा असहयोग तो पद्धतिके ख़िलाफ़ है। यह असहयोग किस प्रकारका है और इस असहयोगसे हम क्या करनेवाले हैं? इसका विचार करने पर मुझे दो बातें याद आईं। एक बात है बाघ और बकरेकी। एक बाघ और एक बकरेको एक साथ रखा गया। बाघ था पिंजरेमें और बकरा आज़ाद था। बकरेको अच्छा अच्छा खानेको मिलता था, हरी घास मिलती थी, फिर भी वह हमेशा सूखता ही जाता था। मेरे जैसे एक चतुर आदमीने समझ लिया कि बकरेका शरीर बनता नहीं, इसकी वजह यह है कि उसके पास ही बाघ रहता है। बाघकी नजरसे दूर हो जाने पर बकरा जैसा तैसा खाकर भी नाचने लगा और हट्टाकट्टा होने लगा।

दूसरी बात मुझे सर नारायण चंदावरकरकी लिखी याद आई, जो मैंने जेलमें पढ़ी थी। सर नारायण पूनामें एक बार सैरको जा रहे थे। रास्तेमें एक बूढ़ी भेड़के एक बच्चेको अपने घर ले जा रही थी। बच्चा साहबके घर था इसलिए खानेको तो उसे अच्छेसे

अच्छा मिलता था। लेकिन वहाँ बच्चेको चैन न पड़ा। बूढ़ी उसे अपने घर ले जा रही थी तब वह नाचता था, कूदता था और बूढ़ीको रास्ता दिखाता था! इसका कारण यह था कि बूढ़ीके साथ वह अपने घर जा रहा था। कोई भी प्राणी आज़ादीमें ही ख़ुश रह सकता है, ग़ुलामीमें नहीं। इस बातको तुलसीदासने अपनी अनोखी वाणीमें इस तरह कहा है: 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।'

सरकारी शिक्षणमें अच्छीसे अच्छी सुविधायें मिलती हैं, अच्छे अच्छे अध्यापक मिलते हैं, बड़े बड़े मकान मिलते हैं, फिर भी हमारे कपाल पर तो कलंकका टीका ही रहेगा। हमारे नसीबमें तो नौकरी—क्लर्कीके सिवा दूसरा कुछ है ही नहीं। ज़्यादासे ज़्यादा हमें वकालत सूझेगी। वकालत भी एक ओर रही, हमें तो ग्रेज्युएट होकर ३० रुपयेसे शुरू होनेवाली नौकरी ही सूझेगी। बहुत बढ़कर अगर कहीं गुजरात कॉलेजमें प्रोफेसर बन गये, तब तो समझिये कि उन्नतिकी हद हो गई! इसके विपरीत महाविद्यालयमें तरह तरहकी मुसीबतें भोगते भोगते पढ़नेको मिल सकता है, और अक्षर-ज्ञान तो जितना मिल जाय उतना ठीक। महाविद्यालयके मकान पर छप्पर हो भी सकता है, या न भी हो सकता है। मकान-मालिक किसी भी समय नोटिस देकर हमें बाहर निकाल सकता है। विद्यापीठके लिए वल्लभभाई भीख माँगते फिरते हैं। विद्यापीठ कल रहेगा या नहीं, यह भी एक सवाल हो सकता है। हमारी यह हालत है। गुजरात कॉलेज पर तो सूरज कभी डूबता ही नहीं; और आपके विद्यापीठ पर तो सूरज रोज उगता है और रोज डूबता है। दुनियाका क़ुदरती नियम यही है। इस नियमके अनुसार चल कर ही हम उन्नति कर सकते हैं।

आदर्श तो हमें ऊँचे ही रखने चाहिये। ऊँचे आदर्शों तक हम पहुँच नहीं सकते। यह सच है कि हम ग़लतियाँ करते हैं, यह भी सच है कि हम पाप करते हैं, लेकिन हम पापको पुण्य नहीं मनवाते।

'सा विद्या या विमुक्तये' यह सूत्र हमारा आदर्श है। भाई किशोरलालने मुझसे कहा: "इस महान सूत्रका संकुचित अर्थ करके क्या हम इसका नाजायज़ लाभ नहीं उठाते?" भाई किशोरलाल जो कुछ कहते हैं उस पर मुझे खूब विचार करना पड़ता है। उनकी बात मुझे बहुत खटकती है। मैंने देखा है कि हम इस महान सूत्रका नाजायज़ लाभ नहीं उठाते। जो मनुष्य यह मुक्ति पा सकता है उसीको वह मुक्ति – मोक्ष – मिल सकती है। इतनी छोटी मुक्ति भी अगर हम न पा सकें, तो बड़ी मुक्ति हमें कैसे मिल सकती है? इस-लिए मुक्तिके सामान्य और सच्चे दोनों अर्थोंमें मुक्ति ही हमारा आदर्श है।

आज मुझे इस विद्यापीठको जन्म देनेकी वजहसे जरासी भी अशांति नहीं है, थोड़ा भी पछतावा नहीं है। इस महाविद्यालयके सभी विद्यार्थी भाग जायें और सरकारी कॉलेजोंमें भर्ती हो जायें, तो भी मैं हँसूंगा और कहूँगा कि वे कितने मूर्ख हैं और मैं कितना समझदार हूँ! हिन्दुस्तानके तरनेके लिए दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। हम सब बड़े मोहके नीचे पिस रहे हैं, इस कारण हमें यह बात सूझती नहीं। मैं तो मरूँगा तब तक यह कहता ही रहूँगा कि मेरे लिए बहिष्कार — असहयोग — के सिवा दूसरा कोई रास्ता है ही नहीं। मैं जब समझ लूँगा कि अब सरकारके साथ पूरा सहयोग करनेकी स्थिति आ गई है तब दूसरी बात कहूँगा। तब तक तो सारा हिन्दुस्तान मुझे छोड़ दे तो भी मैं बहिष्कारकी बात पर ही डटा रहूँगा। यह बात मैं इसलिए कहता हूँ कि मैं अनुभवी आदमी हूँ, मैंने बरसों तक इस पर विचार किया है। यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि इसके लिए मैंने तपस्या की है। दूसरी कोई बात मैं कह ही नहीं सकता। जो आदमी जानता है कि बीस पंजे सौ होते हैं वह क्या यह कहेगा कि बीस चौके सौ या बीस छक्के सौ हो सकते हैं? यरवडा आश्रममें मेरे ये विचार ज़्यादा पक्के ही बने हैं।

पढ़नेके बाद क्या किया जाय, यह एक सवाल है। जीविकाके बारेमें कृपालानीने मेरे लिए कहनेको कुछ बाकी नहीं रखा है। मुख्य बात यह है कि हम इस डरसे निकल जाना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि तुम नौकरी करना चाहो तो कर सकते हो, अक्षर-ज्ञानको अगर जीविकाका साधन बनाना चाहो तो बना सकते हो। यहाँ मैं तुमसे यही कहना चाहता हूँ कि कोई अंग्रेज़ नौजवान क्या करता है। अंग्रेज़ोंके लिए मेरे मनमें तिरस्कार नहीं है। बहुतसे लोग यह नहीं जानते होंगे कि मैं अंग्रेज़ों पर आशिक़ हूँ। अंग्रेज़ोंके अनुकरणको मैं त्यागने जैसा नहीं मानता। मुझे सिर्फ़ अपनी धरती चाहिये। मेरी अपनी धरतीमें मैं कहींसे भी रंग लगाकर भर सकता हूँ। मेरे साथ रहनेवाले मेरे अंग्रेज़ मित्रोंमें से एकने भी यह नहीं कहा कि तुम्हारे साथ हमारा रहना न हो सका तो हमारा क्या होगा? वे अपना रोज़गार धंधा छोड़ छोड़कर मेरे पास आये थे। उनकी ज़रूरतोंका मैंने ग़लत अंदाज़ लगाया था, फिर भी उनमें से किसीने कड़वी बात नहीं कही कि तुमने हमारी ज़रूरतोंका ग़लत अंदाज़ लगाया था। इतना ही नहीं, उनमें से हरएकके मनमें यह भाव था कि मैं क्या गांधीके जिलाये जीनेवाला हूँ? मुझे जिलानेवाला तो ईश्वर है। जिस पुरुषने — जिस चैतन्यने तुम्हें जन्म दिया है, वह तुम्हें रोटी भी देगा। मुसलमान और हिन्दू दोनों यह बात जानते हैं। लेकिन आज तो मुसलमान क़ुरानको भूल गये हैं और हिन्दू गीताको भूल गये हैं। आज वे क़ुरान और गीताके बदले धूल जैसे निकम्मे अर्थ-शास्त्रको पकड़े बैठे हैं। आज वे इस बातकी गहरी चिन्तामें पड़े हैं कि उन्हें भूखों न मरना पड़े। वे यह नहीं जानते कि जिन्होंने ऐसी चिन्ता नहीं की वे भूखों नहीं मरे। और यह चिन्ता किसलिए की जाय? अपने ध्येयके बारेमें निश्चिन्त होनेकी बात ही तो हमें शालामें सीखनी है। अंग्रेज़ोंकी शालाओंमें भी विद्यार्थियोंको जीविकाकी चिन्ता नहीं करने दी जाती। शिक्षक उनसे कहते हैं: "पढ़कर उद्योग और

परिश्रम करना और रोटी कमा लेना।" इसीलिए तुम देखते हो कि उस छोटेसे टापू इंग्लैंडसे अंग्रेज़ कहाँ कहाँ जाते हैं। मेरे अनेक अंग्रेज़ मित्र आज दुनियामें घूम रहे हैं। कोई पूछेगा : "पर उन्हें तो ब्रिटिश झंडेका सहारा है न?" ब्रिटिश झंडेके सहारेसे उन लोगोंका पेट नहीं भरता, उनकी रक्षा ज़रूर होती है। अंग्रेज़ोंको कोई मारे तो ब्रिटिश झंडा फरकेगा और तोपें भी चलेंगी। हमें ऐसी रक्षा नहीं चाहिये। लेकिन आज इस विषयका हमारी चर्चासे सम्बन्ध नहीं है। आजका विषय तो यह है कि तुम इसका विचार ही मत करो कि भविष्यमें तुम्हारी जीविकाका क्या होगा। तुम्हें ऐसा लगना चाहिये कि हम भंगीका काम करके जीविका कमा लेंगे, बुनकरका काम करके जीविका कमायेंगे, लेकिन बदनामीका कोई काम नहीं करेंगे, किसीके दरवाज़े भीख माँगने नहीं जायेंगे। फिर इसकी चिन्ता क्यों करते हो कि तुम्हारे माँ-बापका और तुम्हारे भाई-बहनोंका क्या होगा? जैसे अँधेरेमें उजाला करनेके लिए एक दीया काफ़ी है, उसी तरह तुम्हारे परिवारमें तुम एक सपूत निकलोगे तो भी काफ़ी है। भले ही तुम्हें माँ-बाप और भाई-बहनका गुज़ारा चलाना पड़े; बहनसे तुम कहना कि तुझे खिलाकर मैं खाऊँगा, लेकिन तुझे रबड़ी खानेको नहीं मिलेगी, मामूली रोटी ही मिलेगी। तब वह बहन तुम्हें मेहनत करते देखकर बैठी नहीं रहेगी, बल्कि तुम्हारे साथ मेहनत करेगी और तुम्हारी रोटीमें हिस्सा बँटायेगी। इस तरह अगर तुममें हिम्मत होगी तो सब अच्छा ही होगा।

तो हम क्या करें? मैं तुमसे कहता हूँ कि अगर तुम्हारा विश्वास अपने अध्यापकों पर से उठ जाय, अगर तुम्हें लगे कि तुम्हारे ये अध्यापक पैसा कमाने यहाँ आये हैं, आडंबर — ढोंग — करने यहाँ आये हैं, बड़े बननेके लिए आये हैं, तो उन्हें छोड़कर तुम चले जाना। एक आदमीने कहा था : "आपको पैसेका लोभ तो नहीं होगा, लेकिन आडंबर आप ज़रूर करेंगे, क्योंकि आपकी इच्छा महात्मा बननेकी तो होगी

न ? " उसकी बात सच है। इसलिए अगर तुम्हें ऐसा लगे कि तुम्हारे अध्यापक बड़े बनना चाहते हैं, तो तुम उनका त्याग कर देना। उनका त्याग ही मत करना बल्कि बाहर जाकर उनकी जी भरकर निन्दा भी करना। अध्यापकों और विद्यार्थियोंके बीच कोई करार नहीं है। लेकिन अगर अध्यापकोंमें चरित्र हो, तो तुम अपना सारा बोझ उन पर मत डाल देना। विद्यादान कोई देनेवाला नहीं है। विद्यादान किसीसे दिया ही नहीं जा सकता। अध्यापकोंका काम तुम्हारे भीतरके तेजको परखना और उसे खींचकर बाहर लाना है। उस तेजको चमकाने और बढ़ानेका काम तो तुम ही कर सकते हो। अंग्रेजी शब्द 'एज्युकेशन' का भी यही अर्थ है—विद्यार्थीके भीतर जो कुछ हो उसे खींचकर बाहर ले आना। इसलिए महाविद्यालयमें क्या सीखनेको मिलेगा, इस बारेमें तुम निर्भय रहना, अपने अध्यापकों पर विश्वास रखना और वे जो कुछ सिखावें उसे श्रद्धासे ग्रहण करना।

अपनी नीति, अपने सदाचारकी रक्षा करना तुम्हारे अपने हाथमें है। तुम्हारी नीतिकी रक्षा अध्यापक नहीं कर सकते। हमेशा इस बातका ध्यान रखना कि तुम्हारा मौजशौक़ तुम्हारे अध्ययनमें, तुम्हारे हाथोंकी ताक़तमें, तुम्हारे पुरुषार्थमें है। तुम हाथ-पैर हिलाना सीखो। विद्यार्थी पहले तो अपंग बन जाते हैं और फिर कहते हैं कि अब हमें अखाड़ेमें जाकर शरीरकी ताक़त बढ़ानी चाहिये, हृदयकी शक्ति तो बादमें भी बढ़ाई जा सकेगी।

मेरी प्रार्थना तुम लोगोंसे है। ईश्वरसे तो मैं क्या प्रार्थना करूँ? उसके सामने तो मैं रोता हूँ। इसलिए मेरी प्रार्थना तुम्हारे लिए ही है। तुम खुद अपनी और अपने अध्यापकोंकी शोभा बढ़ाओ। हमारा यह विद्यापीठ सारे हिन्दुस्तानके लिए एक नमूना है। शिक्षाके असहयोगकी शोभा गुजरातने ही बढ़ाई है। कितनी बढ़ाई है इसका हिसाब तो भविष्यमें ही किया जायेगा।

अध्यापकोंसे मैं विनती नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं भी उन्हींमें से एक हूँ। इस समय तो मैं तुम्हारे सामने सिर्फ़ यही विचार रखना चाहता हूँ कि शिक्षाके असहयोगकी सफलता या असफलता-का आधार तुम लोगों पर ही है। मैं चाहता हूँ कि तुम यही विचार लेकर घर जाओ।

३

शिक्षण-परिषद्में

[ता० १-८-१९२४ को राष्ट्रीय शिक्षण-परिषद्में दिया गया भाषण।]

मुझे यह कहते हुए बड़ा दुःख होता है कि मैं जितनी तैयारी करना चाहता था उतनी नहीं कर सका। सच बात तो यह है कि मुझे यह साहस बिलकुल नहीं करना चाहिये था। मेरे पास इतनी शरीर-शक्ति भी नहीं है और समय भी नहीं है। लेकिन मुझ पर इतना दबाव डाला गया कि मुझे मजबूर होकर कहना पड़ा कि अगस्तके शुरूमें परिषद् रखें तो उसमें मैं हाज़िर रहूँगा। थोड़ा विचार करने पर मुझे लगा कि परिषद्में हाज़िर रहनेके अलावा मुझे कुछ काम भी करना पड़ेगा। अपने विचारोंको लिख डालनेका समय मैं निकालना चाहता था, लेकिन वह भी नहीं हो सका। इसी तरह जितना विचार मैं इस बारेमें करना चाहता था उतना विचार भी नहीं कर सका। आशा है कि इसके लिए आप सब मुझे माफ़ करेंगे।

मित्रभाव

भाई किशोरलालकी विनती पूरी करना मेरी शक्तिसे बाहर है। शिक्षक आपसमें मित्रों जैसा बरताव करें, यह तो स्वराज्य कहा जायगा। यह देना मेरे हाथकी बात नहीं। ऐसी भिक्षा, ऐसी भीख तो ईश्वरसे

ही माँगी जा सकती है। ईश्वर इतना दे दे तो समझना चाहिये कि सब कुछ मिल गया। आपको तो ऐसी भिक्षा नहीं जैसी ही लगेगी, पर मेरे लिए वह देना असंभव है। मैं तो केवल थोड़ी सूचनायें और ऐसे आँकड़े देना चाहता हूँ, जिनसे आपमें और मुझमें उत्साह पैदा हो।

मेरी समय-मर्यादा

हिन्दुस्तानमें आज निराशाका जो समय आ गया है, उसका एक कारण मैं भी हूँ। मैंने हिन्दुस्तानके सामने समयकी यह मर्यादा रखी थी कि एक वर्षमें हमें स्वराज्य लेना ही चाहिये। एक वर्ष तो चला ही गया, मगर एकसे ज्यादा वर्ष भी चले गये, फिर भी ऐसा लगता है कि स्वराज्य अभी दूर है। १९२१ में स्वराज्य जितना दूर था उससे भी शायद कुछ लोगोंको वह आज ज़्यादा दूर लगेगा। लेकिन मैं यह नहीं मानता। मुझे तो स्वराज्य पास आया हुआ लगता है। इसके लिए मेरे जैसी अडिग श्रद्धा होनी चाहिये। यह श्रद्धा किसीके देनेसे नहीं दी जा सकती। यह तो अनुभवसे ही मिलती है। अगर मैंने समयकी मर्यादा न रखी होती और उसके मुताबिक़ त्रैराशिक न लगाया गया होता, तो जितना काम हुआ है उतना भी न हो सका होता।

कुछ आँकड़े

मैं जो आँकड़े आपके सामने रखना चाहता हूँ उनसे आप लोग अनजान नहीं हैं। इतने आँकड़े भी हमारे उत्साहको टिकाये रखनेके लिए काफ़ी हैं। असहयोगके हर अंगमें गुजरातने जो काम किया है वह शरमाने जैसा नहीं है — गुजरातके लिए ही नहीं, लेकिन हिन्दुस्तानके लिए भी शरमाने जैसा नहीं है। यह बात ठीक है कि त्रैराशिकके हिसाबसे हमारे हिस्सेमें जितना काम आया उतना हम नहीं कर सके हैं। लेकिन अगर हर आदमी भरसक जितना किया जा सके

उतना कर चुका हो—और मैं जानता हूँ कि ऐसा न माननेके लिए मेरे पास कोई कारण नहीं है—तो हमारे लिए शरमाने जैसा कुछ नहीं है। यह मैं क्यों कहता हूँ, इसका कारण आपको समझा दूँ।

मैंने अपने साथियोंको यह उलाहना दिया है कि इतना ही काम तुमने क्यों किया, क्योंकि उलाहना देना मेरा धर्म है। जो आदमी सेवा करना चाहता है और सेवाके सिलसिलेमें जिस पर सरदारी करनेकी जिम्मेदारी आई हो, उसे तो अपने साथियोंसे ज़्यादासे ज़्यादा कामकी माँग करनी होगी और उन्हें उलाहना देना भी उसका धर्म होगा। लेकिन जब मैं निष्पक्ष होकर सोचने बैठता हूँ तब मुझे ऐसा नहीं लगता कि किसीने अपने काममें बेईमानी की है।

यह तो मैंने उजला पहलू पेश करनेकी दृष्टिसे कहा। इसके समर्थनमें जो आँकड़े मैंने प्राप्त किये हैं, उन्हें आप जानते हैं। उन्हें महामात्रने लिखा है और आप शिक्षकोंने ही इकट्ठा किया है। इन आँकड़ोंसे मैं स्वयं अपनेको और आपको उत्साह दिलाना चाहता हूँ। म्युनिसिपैलिटीकी तीन शालाओंको छोड़ दें, तो हमारे पास राष्ट्रीय शालाओंमें १०००० विद्यार्थी हैं। इन शालाओं पर हमारे साढ़े तीन लाख रुपये खर्च हुए हैं। इन विद्यार्थियोंमें ५०० लड़कियाँ हैं। यह संख्या कम है, लेकिन हम इतनी लड़कियोंको पढ़ा रहे हैं। अहमदाबाद, नड़ियाद और सूरतकी म्युनिसिपैलिटियोंने असहयोगका सिद्धान्त स्वीकार करके अपनी शालाओंको राष्ट्रीय बनाया है। इन शालाओंके आँकड़ोंके साथ विद्यार्थियोंकी कुल संख्या २०००० होती है। इनमें १०००० विद्यार्थी अहमदाबादके हैं। शिक्षक हमारे पास ८०० हैं। उन्हें रोज़ी भी इन साढ़े तीन लाख रुपयोंमें से ही मिलती है। महाविद्यालय हमारे पास दो हैं; पुरातत्त्व-मंदिर भी है। इनके बारेमें मैंने सुना है कि जैसा काम यहाँ चलता है वैसा हिन्दुस्तानमें और कहीं नहीं चलता। तीन जीती-जागती संस्थायें हमारा पोषण कर रही हैं और हमसे पोषण पा रही हैं। ये संस्थायें हैं: दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवन, चरोतर शिक्षा-

मंडल और भड़ौंच शिक्षा-मंडल। इनके संस्थापक और संचालक यह क़बूल करेंगे कि इन संस्थाओंने असहयोग करके जिस तरह असहयोग आंदोलनकी शोभा बढ़ाई है उसी तरह असहयोगसे पोषण भी पाया है।

पाठ्यपुस्तकें

इसके अलावा, हमने अनेक पाठ्यपुस्तकें तैयार की हैं। उनमें से बहुतसी मैं जेलमें देख गया हूँ। दक्षिणामूर्ति और चरोतर शिक्षा-मंडलकी पुस्तकें भी मैं देख गया हूँ — जाँच गया हूँ। उन्हें मैं पढ़ गया हूँ, यह नहीं कहता। लेकिन बहुतसी पुस्तकें देखनेसे इतनी शक्ति मुझमें आ गई है कि ऊपर ऊपरसे देखने पर यह समझ लूँ कि किस पुस्तकमें क्या लिखा है, कैसी शैलीमें लिखा है और लेखक क्या कहना चाहता है। इन पुस्तकोंके लेखकों और इन संस्थाओंको धन्यवाद देना चाहिये। इनके सिवा विद्यापीठकी पुस्तकें अलग हैं। गुजरातके आजकलके यानी पिछले ५० वर्षके इतिहासकी जाँच करें, तो पता चलेगा कि ऐसा काम पहले कभी हुआ ही नहीं है। आज तकका सारा काम सरकारका किया हुआ था। उसका यश हम नहीं ले सकते। उसमें हमारे आदमी ज़रूर थे, लेकिन योजना सरकारकी और सरकारके रखे हुए आदमियोंकी थी। वह योजना इस समयकी राज्य-पद्धतिका पोषण करनेवाली थी और इस विचारसे बनाई गई थी कि उस पद्धतिका पोषण करनेके लिए शिक्षा कैसे दी जाय। यह काम उन्होंने किया तब पहले बरसमें कितनी पुस्तकें लिखीं, इसका त्रैराशिक निकालें तो भी हम उनसे आगे बढ़ जायँगे। लेकिन हम किसीसे मुक़ाबला नहीं करना चाहते।

गुजरात अधिकसे अधिक पिछड़ा हुआ प्रान्त था, आज भी है। गुजराती लोग अपढ़ रहे, वे सिर्फ़ व्यापार करना जानते थे; उन्होंने इतना ही समझा था कि व्यापारसे जितना पैसा गुजरातमें लाया जा सके उतना लाया जाये। समाजके लिए साहित्य रचने और उसे छापनेकी भावना असहयोगके पहले व्यापक नहीं हुई थी। लेकिन इस दिशामें

सबसे पहला काम करनेवाला था 'सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय'— यानी स्वामी अखंडानन्द। उन्होंने गुजरातमें खूब सस्ती पुस्तकोंका प्रचार और प्रसार किया। लेकिन असहयोगका आन्दोलन उससे भी आगे बढ़ गया है। इसलिए अखंडानन्दके सुन्दर और उत्तम कामको हम भूल सकते हैं, हालाँकि वह ऐसा है जो कभी भूला नहीं जा सकता।

चेतावनी

पाठ्यपुस्तकोंके बारेमें मुझे जितना कहना था उससे अधिक मैंने कह दिया। अब मैं एक चेतावनी भी देता हूँ। ऐसी पाठ्यपुस्तकें बहुत बड़ी तादादमें गुजरातमें निकला करें, तो उससे मैं लुभा नहीं जाऊँगा। यरवडा जेलमें जब मुझ पर पाठ्यपुस्तकोंकी वर्षा होने लगी तो मैं चौंक उठा। उन सबकी छपाई वग़ैरा सुन्दर थी। एक पुस्तक पर तो मैं बहुत मुग्ध हो गया। लेकिन यह सब गुजरातको शोभा नहीं देता। गुजरात भिखारी नहीं है। दूसरे प्रान्तोंके मुक़ाबले गुजरातके पास अच्छा पैसा है। लेकिन मुझे लगता है कि गुजरात इतना भारी बोझ नहीं उठा सकता। इतनी तादादमें निकलनेवाली पुस्तकोंको वह पचा भी नहीं सकता, उसकी जेबें भी यह बोझ बरदाश्त नहीं कर सकतीं। अगर हम अहमदाबाद, सूरत, नड़ियाद, भड़ौंच जैसे शहरोंके लिए ही ऐसी पुस्तकें लिखें तो मुझे कुछ नहीं कहना; हालाँकि इन शहरियोंके दिमाग़ इतना बोझ कभी नहीं उठा सकते, उनकी जेबें भले ही यह बोझ उठा सकें। लेकिन गाँवोंमें रहनेवाले माँ-बाप यह बोझ बिल्कुल नहीं उठा सकते। हम जो पुस्तकें छापें और जनताके सामने रखें, वे ऐसी होनी चाहिये कि ग़रीबसे ग़रीब बच्चोंको भी मिल सकें। मेरा बस चले तो मैं एक, दो या चार पैसेकी पाठ्यपुस्तकें निकालूँ।

नवजीवन प्रकाशन मंदिर

मुझसे कहा जाता है कि नवजीवन प्रकाशन मंदिरने बहुतसी पुस्तकें निकाली हैं। लोग शायद नहीं जानते होंगे कि नवजीवनका

मालिक मैं नहीं हूँ; उसके मालिक स्वामी आनंदानंद हैं। वे तो सब कुछ छाप-छूप कर ही मुझे खबर देते हैं। मेरे पास ऐसी शिकायतें आई हैं कि आनंदानंदने गुजरातको धोखा दिया है और 'नवजीवन' से ५०००० की भेंट दिलवाई है। लेकिन उन्होंने खाये कितने हैं, यह आप क्या जानें? ऐसे लोगोंको मैं यही जवाब दूँगा कि मेरे पास ऐसे खानेवाले साथी नहीं रहते, और अगर रहते हों तो मुझे उनका पता नहीं। संस्थामें काम करनेवाले कुछ साथी तनख्वाह नहीं लेते और कुछ गुज़ारा होने जितनी ही तनख्वाह लेते हैं। लेकिन मैं सबकी उचित तनख्वाहका हिसाब लगाऊँ, तो वह रकम ५०००० से बढ़ जायगी।

पाठ्यपुस्तकें नहीं चाहिये

यह सच है कि मैं होता तो इतनी पुस्तकें नवजीवन प्रकाशन मंदिरसे निकलने न देता। मैं तो एक पुस्तक जनताके सामने रखूँ उससे पहले हजार बार सोचूँगा। मैंने एक छोटी मामूली-सी पुस्तक — बालपोथी — लिखी है। उसे पढ़ने बैठूँ तो पाँच मिनटमें खतम कर दूँ और जरा छटासे पढ़ूँ तो दस मिनटमें खतम करूँ। उस पर टीकायें आई हैं, जिन्हें मैंने पढ़ा नहीं है। मैं जानता हूँ कि बहुतसी टीकायें मुझे खुश करें ऐसी नहीं हैं। मेरी प्रशंसा और निन्दाका कोई पार नहीं है। इसलिए दोनोंका मुझ पर कोई असर नहीं होता। फिर भी उस पुस्तिकाके पीछे जो विचार है उसका बड़ा महत्त्व है। विचार यह है कि शिक्षक मुँहसे ही शिक्षा दे, पुस्तकों और पाठ्यपुस्तकोंके ज़रिये शिक्षा नहीं दी जा सकती। जिस जिस देशमें शिक्षाकी पाठ्यपुस्तकोंका ढेर होता है उस देशके बालकोंके मनमें क्या भरा जाता है, यह भगवान ही जाने — भूत ही भरा जाता है। उनसे बालकोंकी विचार-शक्ति नष्ट हो जाती है। असंख्य बालकोंके अनुभवके आधार पर और अनेक शिक्षकोंके साथ हुई बातचीतके आधार पर मेरा यह निश्चय बना है। दक्षिण अफ्रीकामें मैं आँखें खोल कर घूमता था, वहाँ जो दावानल सुलगा हुआ था उसमें मैं घूमता था, उस वक्त भी मुझे यही

अनुभव हुआ था। आप दो शालाओंकी तुलना कीजिये — एक ऐसी शाला जिसमें शिक्षकोंके पास बहुतसी पाठ्यपुस्तकें हों और दूसरी ऐसी जिसमें पाठ्यपुस्तकोंके बिना ही शिक्षकोंको पढ़ाना पड़ता हो। दोनों शालाओंके शिक्षकोंमें तेज और सत्त्व तो है ही। लेकिन जिनके पास पाठ्यपुस्तकें नहीं हैं वे शिक्षक बालकोंको जितना सिखा सकते हैं उतना पाठ्यपुस्तकोंवाले नहीं सिखा सकते। मैं बालकोंके हाथमें पाठ्य-पुस्तकें नहीं रखना चाहता। शिक्षकोंको खुद उन्हें पढ़ना हो तो पढ़ सकते हैं। शिक्षकोंके लिए हम चाहे जितनी पाठ्यपुस्तकें लिखें, लेकिन अगर बालकोंके लिए लिखेंगे तो शिक्षकोंको मशीन जैसे बना देंगे; इससे हम शिक्षकोंकी खोज करनेकी शक्ति और स्वतंत्रताको खतम कर देंगे। लेकिन मैं शिक्षकोंकी गतिको रोकना नहीं चाहता। मैं तो सिर्फ़ इतना ही चाहता हूँ कि मेरी यह दृष्टि भी आप जान लें। पाठ्य-पुस्तकोंके लेखक अनुभवी हैं। प्रजाको जहाँ उनकी पाठ्यपुस्तकोंकी ज़रूरत हो वहां वह ज़रूर उन्हें काममें ले, लेकिन मेरे कहनेके पीछे जो दृष्टि है उसे आप जान लें।

आप मुझसे पूछेंगे: "आपने शिक्षकका काम किया है?" मेरे इस विचारके पीछे काफ़ी अनुभव है। मैंने शिक्षाके बारेमें खूब सोचा-विचारा है। मैंने जो दृष्टि आपके सामने रखी है उस दृष्टिसे आप विचार करके देखिये और अपनी गतिको थोड़ी धीमी कर लीजिये। मेरे कहनेका मतलब यह है कि अगर लाखों बालकोंके लिए पुस्तकें तैयार करनी हों, तो गुजरातके पास उसके लिए पैसे नहीं हैं; इस प्रयत्नमें वह थक जायगा। दूसरी बात यह है कि हम इन पाठ्य-पुस्तकोंका बोझ बालकोंके दिमाग पर न रखें।

आदमीको कोई नया विचार सूझे और उस पर वह क़ुरबान हो जाय और तुरंत उसे दुनियाको दे दे, तो इसमें वह खुद भी खोता है और दुनिया भी खोती है। लेकिन आदमी अपने विचारोंका संग्रह करे, उन पर प्रयोग करे — अपने पर करे और बच्चों पर करे और आखिरमें

खरे-खोटेका हिसाब मिलाये और उसके बाद भी रुक जाय, तो दुनिया कुछ खोयेगी नहीं। इसके लिए मेरे पास बड़े बड़े लोगोंकी मिसालें हैं। उन्होंने अपने विचारोंको जो रोक रखा है उससे न तो ख़ुदने कुछ खोया है और न दुनियाने कुछ खोया है। ऐसे लोगोंने बादमें अपने विचार बदले भी हैं और नया अनुभव होनेसे अपने पुराने विचारोंको वे भूल भी गये हैं। इसकी एक मिसाल हैं जल्दबाज़ एण्ड्रूज़। वे मेरे परम मित्र हैं, मेरे साथ उठने-बैठनेवाले, खाने-पीनेवाले हैं। दस बरस पहले उन्हें ऐसी आदत थी कि जो भी विचार उन्हें सूझते उन्हें वे तुरंत लिख डालते थे। लेकिन दस बरस पहले उनके जो विचार थे वे आज नहीं हैं। वे तो धार्मिक पुरुष हैं—हम भी धार्मिक हैं। हम जिन विचारोंको प्रगट किये बिना मर जायँगे उन्हें आत्मा अपने साथ ले जायगी और किसी समय वे दुनियाको ज़रूर मिलेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षाका जन्म

विद्यापीठ और उसके साथ जुड़ी हुई संस्थायें कैसी परिस्थितियोंमें पैदा हुई हैं इसका विचार कर लें, तो हमारी कई उलझनें सुलझ जायेंगी। आज हम शिक्षाके बारेमें शिक्षकोंकी दृष्टिसे विचार कर रहे हैं। शिक्षकका काम सिर्फ़ शिक्षा देना है; इस दृष्टिसे हमें बालकोंको अच्छीसे अच्छी शिक्षा देनी चाहिये। लेकिन हमारा सवाल इतना आसान नहीं है। हमने सिर्फ़ शिक्षा देनेके लिए विद्यापीठकी शालायें खड़ी नहीं की हैं। विद्यापीठकी स्थापना हमने असहयोगके सिलसिलेमें की थी। इसका अर्थ यह है कि शिक्षक, विद्यार्थी और माता-पिता स्वराज्यके संघमें शामिल हुए हैं, स्वराज्यके सेवक हैं, असहयोगी हैं। लेकिन इस समय मैं आपको असहयोगका चमत्कार बताने नहीं बैठा हूँ, बल्कि राष्ट्रीय शिक्षकोंका कर्तव्य बताना चाहता हूँ। जब आप स्वराज्यके संघमें शरीक हुए तभी आपने यह मान लिया था कि असहयोगका सिद्धान्त सच्चा है।

इस सिद्धान्तमें कोई भूल होगी तो कांग्रेस उसे सुधारेगी। इस तो गाड़ी अच्छी तरह चल रही है, यह मानकर हमें अपना चलाना होगा। असहयोग ठीक है या नहीं — इसका सिद्धान्तकी से कोई निर्णय करनेके लिए हम यहाँ नहीं बैठे हैं। हम दोनोंके इतनी बात समान है कि विद्यापीठकी और उससे जुड़ी हुई ओंकी हस्ती स्वराज्यके लिए है। शिक्षाके लिए शिक्षाका विचार स्वराज्य हासिल करनेके बाद ही करेंगे। आज तो हमें ऊपर बताई त दृष्टिसे ही शिक्षाका विचार करना होगा।

हमारी प्राथमिक शालायें, विनय-मंदिर, महाविद्यालय और पुरा-मंदिर भी चलानेमें हमें अपने सामने यही दृष्टि रखनी चाहिये। ज्य और असहयोगके सिद्धान्तका भंग हम कभी न करें। हमें ज्य प्राप्त करना है; और सत्य व अहिंसा उसके साधनोंके रूपमें निश्चित किये हैं। कांग्रेसके संकल्पमें 'शांतिपूर्ण' और 'वैध' का जो भी अर्थ होता हो, मेरी दृष्टिमें तो उनका एक ही अर्थ -सत्य और अहिंसा; और मैं मानता हूँ कि गुजरात भी इन का यही अर्थ करता है। इसके सिवा, पाँच प्रकारका बहिष्कार हमने स्वीकार किया है। इसे हम तोड़ें तो कहा जायगा कि प्रति- पालन नहीं होता। हम बालकोंकी नीतिके रक्षक हैं, इसलिए कारको छोड़कर हम उन्हें ग़लत सबक़ सिखायेंगे। जिन लोगोंके बहिष्कारके बारेमें श्रद्धा न हो, उन्हें इन संस्थाओंसे निकल जाना ये। गुज़ारेका सवाल तो सबके पीछे लगा हुआ है; लेकिन हमारा मुख्य हेतु नहीं हो सकता। जिन्हें असहयोगकी शर्तें स्वीकार न हो, ये संस्थायें छोड़ देनी चाहिये। केवल गुज़ारेके ख़ातिर राष्ट्रीय में दाख़िल होना न तो शिक्षा देनेवालेके लिए शोभाकी बात है न शिक्षा लेनेवालेके लिए।

लड़ाईके दो अंग

हमारी स्वराज्यकी लड़ाईके दो अंग हैं—एक ध्वंसात्मक जो तोड़नेसे सम्बन्ध रखता है और दूसरा रचनात्मक जिसका सम्बन्ध रचनासे है। ध्वंसात्मक अंग हमने पूरा कर लिया। अभी भी हम वही काम करते रहें तो हमारा काम किसी भोले और मूर्ख किसानके जैसा होगा। किसी खेतमें बीज बोना हो तो किसान उसमें से घास साफ़ कर देता है, पत्थर हटा देता है और जमीनको जोत कर समतल बना देता है। इतना करनेके बाद भी अगर वह खेतमें उथल-पुथल करता रहे, तो कहा जायगा कि वह समय ही बिगाड़ता है। इसी तरह अगर वह नतीजा देखनेके पहले ही दूसरे खेतमें अपने प्रयोग चलाये, तो वह भी ठीक नहीं है। और एक किसान काम छोड़ कर चला जाय और उसकी जगह दूसरा आकर काम करे, तो यह भी ठीक नहीं कहा जायगा। उसे तो अपने खेतमें स्थायी काम ही करना होगा। अपना काम करते करते वह धीरज रखे कि मेरा खेत अपने आप तैयार हो जायगा। वैसे ही हमारा ध्वंसात्मक काम पूरा हो गया है; अब हमें रचनात्मक—स्थायी—काम करना है। यह रचनात्मक काम बहिष्कारको पोसनेवाला है। हम जो काम कर रहे हैं वह अगर दुनियाकी प्रशंसा पाये, दुनिया उसे स्वीकार कर ले, तो दूसरी शालायें अपने आप खतम हो जायेंगी। इस बातको सब स्वीकार करते हैं कि दूसरी (सरकारी) शालाओंमें आत्मा नहीं है और कहते हैं कि इनकी जगह पर दूसरी कोई चीज़ रखिये। अगर हमें अपने कामके बारेमें अटल श्रद्धा होगी, तो उसकी सिद्धिमें एक बरस लगे या बीस बरस, हम उसे जारी ही रखेंगे।

शिक्षाका स्थायी कार्य

हमारा एक स्थायी काम यह है कि हम शालायें पैदा करें। शिक्षकोंको पंचायतों और अदालतोंको भूल जाना चाहिये। इन सबका विचार हमें नहीं करना है। हम अपनी ज़िम्मेदारीका विचार करें,

तो हमने जग जीत लिया। हमारी दूसरी ज़िम्मेदारी इन शालाओंकी शोभा बढ़ाना है। हमने कामका फैलाव ख़ूब कर दिया है। अब इस फैलावमें से भी हमें पसंदगी करनी होगी। आपमें से जो लोग किसान होंगे वे मेरी बात समझ जायेंगे। किसान खेतमें बीज बोता है, लेकिन उसके जो पौधे उगते हैं उनमें से खराब, पीले और मरे हुए पौधोंको वह निकाल देता है। गेहूँ पकनेके बाद भी वह अच्छेसे अच्छे बीज जमा करता है और उनकी मददसे हर साल अच्छीसे अच्छी फसल पैदा करता है। हमने कामका फैलाव तो कर लिया। अब उसकी शक्ति और गुण हमें बढ़ाना चाहिये।

दूसरा काम चरखेका और अस्पृश्यता दूर करनेका है और तीसरा हिन्दू-मुस्लिम एकताका है। गुजरातमें हिन्दू-मुसलमानोंका सवाल इतना बड़ा नहीं है, लेकिन है ज़रूर। हिन्दुओं और मुसलमानोंको सगे भाइयोंकी तरह रहना चाहिये — इस भावनाको हम बालकोंमें फैला देंगे, तो गुजरातमें भी दोनों क़ौमोंके बीच जो वैरभाव है वह शांत हो जायगा। यह सच है कि गुजरातमें हमने एक-दूसरेके सिर नहीं फोड़े हैं, फिर भी हमारे बीच मित्रताका भाव नहीं है। इसके लिए शालायें ज़िम्मेदार हैं, परन्तु ज़्यादा नहीं। सभी शालाओं पर अछूतोंको दाखिल करनेका बोझ तो है ही। विद्यापीठने अपनी हस्तीको ख़तरेमें डाल कर अछूतोंको दाख़िल करनेका नियम बनाया है। शिक्षकोंने क्या किया? माता-पिताओंने क्या किया? माता-पिता डरते हैं। वे अछूतोंके बिना शाला चलानेको तैयार हैं। उनके मनका रुख़ यह है कि अछूतोंको शालासे दूर रखा जा सके तो अच्छा है। इसलिए हमारी शालाओंमें अछूत बालक बहुत नहीं हैं। हमारे सौभाग्यसे इन्दुलाल, मामा और दूसरे सेवकोंके प्रतापसे हमारे पास १५ अछूत शालायें हैं। लेकिन ये अछूत शालायें हमारी बदनामीकी निशानी हैं — हमारी कार्यशक्ति या उदारताकी नहीं। जहाँ अछूतोंके प्रति अपमान और तिरस्कारका भाव हो वहीं अलग शालाओंकी ज़रूरत पड़ती है;

वर्ना अछूत बालक मामूली शालाओंमें ही पढ़ सकते हैं। हम प्रेमकी जबरदस्ती करके अछूत बालकोंको ले आयें। पहले उन्हें सिखायें, फिर दूसरे बालकोंको। हम उन्हें सजायें-सवारें, नहलायें, खिलायें — वे तोतले हों तो उनके उच्चार सुधारें। लेकिन हमने ऐसा नहीं किया। यह हमारा बड़ा अपराध है, छोटा नहीं।

अस्पृश्यता-निवारणको अगर हम कांग्रेसका एक अंग मानते हों — हमें इसे कांग्रेसका अंग मानना पड़ेगा — तो जब तक हम अछूतोंको दूर रखते रहेंगे, उन्हें गले लगानेके लिए तैयार नहीं होंगे, तब तक हिन्दुस्तानमें स्वराज्य असंभव होगा। अंग्रेजी अख़बार या भाषण करनेवाले लोग मेरे इस वचनका बुरा उपयोग कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए मैं बेफ़िक्र हूँ। स्वराज्य हमें आत्मशुद्धिसे ही लेना होगा। इसलिए यह बात तो मैं कहता ही रहूँगा।

खोटे रुपये

मुझसे कहा जाता है कि शिक्षक इस्तीफ़ा दे देंगे, लड़के चले जायेंगे। लेकिन इससे क्या? बेलगाँववालोंने और जमनालालजीने मुझे ख़बर दी है कि जगह जगह इस्तीफ़े दिये जा रहे हैं। कुछ जगहोंमें तो समिति चलाने जितने सदस्य भी नहीं रहे हैं। यह सब सुन कर मैं खुश हुआ। मेरे पास एक करोड़ रुपये हों, मैं उन्हें पत्थर पर बजाऊँ और वे सब खोटे निकलें, तो ऐसे एक करोड़ रुपये मेरे किस कामके? मैं तो उन्हें साबरमतीमें ही डुबा दूँगा। लेकिन एक करोड़में एक रुपया खरा हो और उसे किसी दिन खोज लेनेकी बात मुझसे कही जाय, तो वह रुपया मुझे किस दिन मिलेगा? मुझे अपने लड़केके लिए आटा लाना हो, तो इसमें वह मेरे काम कैसे आ सकता है? मैं तो आज ही उस खरे रुपयेको खोज लूँगा और दूसरोंको फेंक दूँगा। इस-लिए मैं इस्तीफ़ोंके बारेमें बेफ़िक्र हूँ। ये खोटे रुपये भले ही चले जायें। हम शिक्षक निडर बनें, सत्य पर डटे रहें और कहें कि जिस शालामें अछूत बालक नहीं आ सकते, वह राष्ट्रीय शाला नहीं है, स्वराज्यकी

शाला नहीं है, असहयोगी शाला नहीं है। मैं तो स्वराज्यका पारखी ठहरा। जो शाला कामकी हो उसीकी क़ीमत मैं आँकूँगा। हम आग्रहके साथ यह दृढ़ निश्चय करके जायें कि जिस शालामें अछूतोंके लिए मनाही हो, माँ-बाप टेढ़े तरीक़ेसे अछूतोंको दूर रखना चाहें, उस शाला-का हम त्याग करेंगे। हम अछूतोंकी बस्तीमें जाकर रहेंगे और अछूत बालकोंको सिखायेंगे। शहरके बालक वहाँ पढ़ने आयें तो ठीक, वर्ना इतना बोझ हमारा कम हुआ, पैसेकी इतनी ज़िम्मेदारी घटी। हमारे पास पैसे नहीं हैं। जनता हमें पैसे नहीं देती। अछूतोंका काम जनताको पसंद नहीं है, यह काम अभी जनतामें प्रिय नहीं बना है, इसलिए जनता हमें पैसे नहीं देती — ऐसा समझनेमें ग़लत क्या है? फिर भी हमें तो यह काम करते ही जाना है। हमारी समझमें यह आ जाय कि जनता ग़लत पटरी पर चल रही है, उसे सच्ची पटरी पर चढ़ना ही चाहिये, तो जब वह चढ़ेगी तब हम सिगनल बतानेके लिए तैयार हैं। जिस शालामें हम असहयोगके स्थायी अंगका पोषण न कर सकें वह राष्ट्रीय शाला है, ऐसा हम मनवायें तो पापमें पड़ेंगे।

सूतके धागेसे स्वराज्य

क्या मैं दीवाना हो गया हूँ? सूतके धागेसे स्वराज्य लेनेकी बातमें हमारा विश्वास हो, तो हमें वैसा कर दिखाना चाहिये। मेरे नाम दो पत्र आये हैं। उनमें लिखा है: "तुम मूर्ख हो गये हो। पहले तो तुम चरखेकी बात करनेमें थोड़ी मर्यादा रखते थे, लेकिन अब तो वह भी तुमने छोड़ दी है।" दुनिया मुझे मूर्ख कहे, दीवाना कहे, गालियाँ दे, तो भी मैं यही बात कहूँगा। मुझे दूसरी बात न सूझे तो मैं क्या करूँ? मैं तो महाविद्यालयके स्नातकको भी पास न करूँ, प्रमाणपत्र न दूँ, जब तक वह चरखेकी परीक्षा पास न करे। ऐसा एतराज़ उठाया जाता है कि इसमें ज़बरदस्ती है। ज़बरदस्ती किसे कहते हैं? जब हम ऐसा नियम रखते हैं कि शालामें अंग्रेज़ी, गुजराती, संस्कृत सीखनी पड़ेगी तब क्या उसमें ज़बरदस्ती नहीं होती? उसी

तरह हम कहें कि कातना भी लाज़िमी तौर पर सीखना होगा। हमारा कातनेमें विश्वास न हो तो अलग बात है। विद्यार्थियोंसे अगर कहा जाय कि कातोगे नहीं तो शालामें नहीं रह सकोगे, तो इसमें ग़लती क्या है? फोड़ेको छूनेसे अगर आदमी चीखे-चिल्लाये, तो क्या उसे न छुएँ? फोड़ेको फोड़ डालनेके बाद तो वह खुश ही होगा। ऐसा करनेमें ज़बरदस्ती नहीं है, बल्कि सुव्यवस्था है। जिस चीज़को हमने ज़रूरी माना है उसे शरमाये बिना हमें बालकोंके सामने रखना चाहिये। जिन बालकोंको और माता-पिताको वह स्वीकार न हो वे न आयें। प्राथमिक शाला, विनय-मंदिर और महाविद्यालय अगर स्वराज्यकी शालायें हों, तो उनमें यह नियम होना ही चाहिये। दूसरा विचार हमारे लिए अनुचित है। जिन लोगोंके विचार बदले हों वे इस्तीफ़ा दे दें। कांग्रेसका प्रस्ताव मौजूद है तब तक ऐसा आदमी इन संस्थाओंमें रह ही नहीं सकता।

इन दो शर्तोंको हम कभी न छिपायें। माँ-बापसे हम क्यों डरें? माँ-बापको अगर यह चीज़ पसन्द न हो, तो वे अपने बालकोंको सरकारी शालाओंमें ही भेजें। तब फिर सरकारी शालामें और राष्ट्रीय शालामें भेद क्या? मैं ही यह कहनेवाला था कि हमारी शालाओंमें स्वतन्त्रताका वातावरण है—यही भेद है। कोई पूछेगा कि क्या इतना काफ़ी नहीं है? अवश्य ही है। लेकिन चरखेको और अछूतोंको मैंने कभी भुलाया ही नहीं। स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता या मन-मानी है, ऐसा मैंने सपनेमें भी नहीं माना। बालक भले शिक्षकोंके सिर पर चढ़ें, उन्हें गालियाँ दें, उनके साथ तू-तुकारेसे बात करें, पर उनका कहा ज़रूर मानें। जो बालक अछूतकी गरदन पर बैठे, वह स्वतंत्रताको क्या जाने? उसे स्वतंत्रताका आनंद भी क्या हो सकता है? 'दुबलों' को दबाने और कुचलनेवाले ऊँची जातिके लोग तो ज़ुल्मको ही जानते हैं, स्वराज्यको वे क्या जानें? हमारे शिक्षकोंकी प्रतिज्ञा हर तरहके ज़ुल्मको मिटानेकी है। मैं ऐसा नियम ज़रूर रखूँगा

कि हर परीक्षाके साथ इतना सूत तो विद्यार्थीको कातकर देना ही चाहिये। फिर कुछ ही समयमें मैं दिखा सकता हूँ कि प्रत्येक राष्ट्रीय शाला अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है——स्वाश्रयी बन सकती है।

मैं यह दिखा सकता हूँ कि हिन्दुस्तानके सामने मैं जो सिद्धान्त रख रहा हूँ वे सही हैं। हम शालाओंको यदि "राष्ट्रीय" रखना चाहते हों, तो ये दोनों बातें हमें करनी ही चाहिये। प्रत्येक शिक्षक अगर कातना, पींजना, लोढ़ना और कपासको पहचानना न जानता हो, तो उसे यह जान लेना चाहिये। वह अपना फ़ुरसतका सारा समय इसीमें लगाये। जो शिक्षक खुद यह सब न जानता हो, वह बालकोंको क्या सिखायेगा? कोई शिक्षक कहेगा कि मैं तो बालकोंको भाषाज्ञान ही दूँगा; कातना, बुनना वग़ैरा सिखानेके लिए आप दूसरे शिक्षक रखिये। लेकिन जैसे हममें से हरएकमें खानेकी शक्ति है और हरएकको कपड़े पहनना आता है, वैसे ही हरएकको कातना, बुनना वग़ैरा भी आना ही चाहिये। ऐसा हो तो ही हम बालकोंको प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा सिखा सकते हैं।

हिन्दुस्तानके हाड़-पंजर

आज तक जितना पैसा ख़र्च हुआ है, वह सब महाविद्यालय, विनय-मंदिरों और अछूत शालाओं पर ख़र्च हुआ है। विद्यापीठने प्राथमिक शालाओं पर जोर नहीं दिया है। मैंने जो सिद्धान्त बताये हैं उन्हें यदि हम जीवंत बनाना चाहते हों, तो विद्यापीठको हमें खादीशाला बनाना होगा। असहयोगका आंदोलन सब लोगोंके लिए है, कुछ लोगोंके लिए ही नहीं। हम देशके करोड़ों लोगोंके हाड़-पंजरोंको जगाना चाहते हैं। इन हाड़-पंजरोंको हम चरबीसे भरना चाहते हैं। हमें भोजन मिलता है, इसलिए हममें चरबी है। हम अच्छी तरह खाते हैं, ऐसा हमें लगता है। हिन्दुस्तानके इन हाड़-पंजरों पर चमड़ीके सिवा दूसरा कुछ नहीं है। इन हाड़-पंजरोंको देख कर मैं रोया हूँ।

आप उन्हें देखें तो आप भी रोयेंगे और कहेंगे कि "हमारे देशकी ऐसी हालत है?"

बम्बईके लोगोंको क्या पता कि हाड़-पंजर कैसे होते हैं? हमारा काम जनतामें जागृति पैदा करना है। अखबार बंद हो जायें तो भी क्या? आम लोग अखबार नहीं पढ़ते। वे तो मुझे पढ़ते हैं, आपको पढ़ते हैं। आपकी आँखोंमें उनके लिए प्रेमका भाव होगा तो वे उसे समझ लेंगे। इस बातको आप वेदवाक्य मानिये। आपकी आंखोंमें कुछ होगा तो लोग उसे समझ लेंगे और अखबारोंकी परवाह नहीं करेंगे।

गंगोत्री बनाइये

अगर हम आम लोगोंको शिक्षा देना चाहते हैं, तो महाविद्यालय पर जोर भले ही दें; लेकिन अंतमें उसे गंगोत्री ही बना दें। अंतमें उसके विद्यार्थी तैयार होकर गाँवोंमें ही जा बैठें। इसी विचारसे आप विद्यार्थियोंको तैयार करें। महाविद्यालयमें थोड़े विद्यार्थी आयें तो भी कोई हर्ज नहीं।

प्राथमिक शालायें

लेकिन ज़ोर तो मैं प्राथमिक शालाओं पर ही देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि विद्यापीठ प्राथमिक शालाओं पर ज्यादा ध्यान दे, उनके बारेमें ज्यादा जिम्मेदारी ले। प्राथमिक शालायें कैसे चलायी जायें, इसका विचार करना चाहिये। मैं अपना विचार यहाँ बता दूं। सरकारी शालाओंकी नक़ल करना मूर्खता होगी। दो बरस पहले मैंने 'यंग इंडिया' में कुछ आँकड़े दिये थे। उनमें बताया गया था कि ५० बरस पहले पंजाबमें जितनी प्राथमिक शालायें थीं उससे आज कम हैं। ब्रह्मदेशमें भी जगह जगह शालायें थीं; सभी बालकोंको लिखने, पढ़ने और हिसाबका ज्ञान था। आज वहाँ ऐसा नहीं है, क्योंकि जंगली मानी जानेवाली गाँवकी शालायें सरकारने बंद कर दीं और उनकी जगह अपने ढंगकी शालायें शुरू कीं। हिन्दुस्तानके सात लाख

गाँवोंमें सरकार शालायें कैसे खोले? आज सातमें से तीन लाख गाँवोंमें शालायें नहीं हैं। ऐसी कंगाल हालत जहाँ हो वहाँ सरकारी ढंगकी शालायें खड़ी करनेसे क्या लाभ हो सकता है? हम शालाके मकानके बिना काम चला लेंगे; हमें केवल चरित्रवाले शिक्षक चाहिये। पुराने गुरु ऐसे ही शिक्षक थे। वे लड़कोंको पढ़ाते थे और भीख माँग कर जीविका चलाते थे। वे आटा माँग कर लाते थे; घी मिले तो घी भी ले आते थे। ऐसे गुरु जहाँ अच्छे नहीं होते थे वहाँ विद्यार्थियोंको अच्छी शिक्षा नहीं मिलती थी; जहाँ वे अच्छे होते वहाँ विद्यार्थियोंको अच्छी शिक्षा मिलती थी। आज ऐसी शिक्षाका लोप हो गया है। सुन्दर मकानोंसे अच्छी शिक्षा नहीं दी जा सकती। गाँवोंमें जाकर अगर हम सादगीसे रहें और चरखे वग़ैराका काम करें, तो ही हमारा सोचा हुआ मक़सद पूरा होगा। विद्यापीठसे हम इसका विचार करायें, लेकिन विद्यापीठ आपसे और मुझसे अलग कोई चीज नहीं है। विद्यापीठके सामने पाँच सात आदमी योजना बनाकर रखें और स्वार्थका त्याग करनेवाले लोग गाँवोंमें बैठने और रूखा-सूखा जो भी मिले वह खानेको तैयार हों, तो ही यह सब हो सकता है।

मुझे एक पत्र मिला है, जिसे मैंने 'नवजीवन' में छापा है। उसमें एक शिक्षकने लिखा है कि उन्होंने तीन बालकोंसे अपनी शाला आरंभ की थी। आज उनके पास ९६ बालक हैं। ७३ लड़के हैं और २३ लड़कियाँ हैं। इन बालकोंको वे पेड़के नीचे पढ़ाते हैं। ये बच्चे ब्राह्मणों और बनियोंके नहीं हैं। वह शाला अछूतोंकी है। और एक अछूत शिक्षक जो काम कर सका वह आप और मैं क्या नहीं कर सकते? क्या हमें अछूत बालक भी नहीं मिलेंगे? वे भी न मिलें तो हम अपना प्रयोग दूसरी जगह करेंगे। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमें प्राथमिक शिक्षाके कार्य पर खूब ध्यान देना ही चाहिये।

दुःखकी आग

मैंने सुना है कि माता-पिता हमारे शिक्षाक्रमसे डर गये हैं। विद्यार्थियोंको मातृभाषाके ज़रिये शिक्षा दी जाती है, यह उन्हें खटकता है! यह सुनकर मैं हँसा। दुःख तो मुझे बादमें हुआ। जब हृदयमें दुःखकी आग जलती है तब आदमी रो नहीं सकता, वह हँसता है। मुझे लगा कि यह हमारा कितना भारी पतन है! माता-पिताको डर है कि हमारे बच्चे अच्छी अंग्रेज़ी नहीं बोल सकेंगे; लेकिन अगर बच्चे ख़राब गुजराती बोलें तो वह माता-पिताको नहीं खटकता। बालक गुजराती पढ़ेंगे तो थोड़ी शिक्षा घरमें भी लायेंगे, इसका तो उन्हें ख़याल ही क्यों आने लगा? मुझे ख़ुद रेखागणित, बीजगणित और अंकगणितकी परिभाषा नहीं आती। 'सर्कल' शब्दका गुजराती कोई मुझसे पूछे, तो मुझे सोचना पड़े। त्रिकोणोंके अलग अलग अंग्रेज़ी नाम तो मैं जानता हूँ, लेकिन गुजराती नाम मुझे एक भी नहीं आता। यह कैसी दशा है? ऐसे माँ-बापसे मैं तो कहूँगा कि तुम्हारे बच्चे तुम्हींको मुबारक! क्या मैं अंग्रेज़ीमें उन्हें सिखाकर गुजराती शब्द दूसरोंसे पूछने जाऊँ? इसके लिए राष्ट्रीय शाला खोल कर मैं पैसे इकट्ठे करूँ, इसके बजाय ख़ुद ही सीखने न बैठ जाऊँ? इसके बजाय मैं ख़ुद ही सारी परिभाषा सीख लूँगा और फिर धड़ल्लेसे अपना काम चलाऊँगा। किसी भी अंग्रेज़ विद्वानके सामने अपनी भाषाके शब्दोंकी कठिनाई आती है, यह मैंने नहीं सुना। स्पर्ज्यन नामका एक अंग्रेज़ था। वह कोई बड़ा विद्वान नहीं था, लेकिन जब बोलना शुरू करता तो वाणीका प्रवाह बहने लगता था; जलसेनाके छोटेसे छोटे शब्दोंका प्रवाह छोड़कर वह सबको अचरजमें डाल देता था। हमारे बड़ेसे बड़े विद्वान हैं नरसिंहराव और आनन्दशंकर। उनसे ऐसे कठिन प्रश्न पूछूँ, उनकी परीक्षा अगर बुरी नीयतसे लेने बैठूँ, तो उन्हें मैं तुरंत फेल कर दूँ। ऐसी कंगाल हालतमें अगर मुझसे कहा जाय कि अंग्रेज़ीके ज़रिये बालकोंको पढ़ाओ, तो मैं इनकार कर दूँगा। इतना मैं ज़रूर

स्वीकार कर लूँगा कि मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना कोई असहयोगका अंग नहीं है। कोई माता-पिता मुझसे कहें कि मेरे बच्चेको आप अंग्रेज़ी सिखायें, और उसके साथ आप अपना चरखा, संगीत वग़ैरा भी सिखा सकते हैं, तो मैं ज़रूर यह सौदा कर लूँगा। चार घंटे मैं अंग्रेज़ी सिखाऊँगा और चार घंटे चरखा चलवाऊँगा। अंग्रेज़ी सिखाते सिखाते भी जितनी गुजराती सिखाई जा सके उतनी मैं बच्चेको सिखा दूँगा। इस हद तक मैं माता-पिताको धोखा भी दूँगा, क्योंकि मेरे मनमें तो चोरी ही होगी। आज तो एम० ए० पास हुए लोग भी ग़लत अंग्रेज़ी लिखते हैं, ग़लत हिज्जे करते हैं।

स्त्रियोंकी शिक्षा

स्त्रियोंकी शिक्षाके बारेमें मुझे बहुत कहना था। लेकिन यह विषय गंभीर है। एक तरहसे इसका हमारी लड़ाईसे कोई सम्बन्ध नहीं। हम स्त्रियोंको अपढ़ तो नहीं रखना चाहते। लेकिन स्त्रीशिक्षाकी पद्धति क्या हो, लड़कियों और स्त्रियोंकी शिक्षाकी दो अलग अलग शाखायें कहाँ हों, यह सब एक अलग विषय है; यह शुद्ध शिक्षाका विषय है। इस समय तो हमारी दृष्टि संकुचित है, इस समय तो मैं लड़कियोंको प्राथमिक शालामें खींच लाऊँगा और उनसे सिर्फ़ चरखा ही चलवाऊँगा। दूसरे सूक्ष्म सवालों पर मैंने सोचा नहीं है, हालाँकि लड़कियोंकी शिक्षाके प्रयोग मेरे जितने शायद ही दूसरोंने किये हों। मैंने जवान लड़के-लड़कियोंको एक साथ पढ़ाया है; इसके लिए मुझे पछतावा नहीं है। मुझे कड़वे अनुभव ज़रूर हुए हैं, लेकिन लड़के-लड़कियोंका कोई भारी नुकसान नहीं हुआ है; क्योंकि मैं उन पर सिंहकी तरह गरजता रहता था। आप ऐसा कभी न मानें कि इस विषय पर मैं अधिक नहीं बोलता इसलिए मैं इसकी उपेक्षा करता हूँ।

अपने विचारोंके निचोड़के रूपमें मैंने ये प्रस्ताव तैयार किये हैं। इन पर आप लोग विचार कर लीजिये। ये प्रस्ताव मैंने रखे हैं इसीलिए आप इन्हें मंजूर न करें। महासमितिमें तो मैं जोरदार आग्रह

लेकर गया था कि आपको मेरे प्रस्ताव मंजूर करने ही चाहिये। लेकिन यहाँ मैं केवल सलाहके रूपमें ही ये प्रस्ताव आपके सामने रखता हूँ। इन प्रस्तावोंका आप निडरतासे विरोध करेंगे तो मुझे दुःख नहीं होगा; मुझे दुःख होगा ढोंगसे, प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेसे। यहाँ ढोंग नहीं है, क्योंकि प्रतिज्ञा भी नहीं है।

४

गूजरात महाविद्यालयमें

[गांधीजी १९२४में जेलसे छूटे उसी समयसे आचार्य कृपालानी और उनके विद्यार्थी यह सोचनेमें मशगूल थे कि गांधीजीका सम्मान कैसे किया जाय। गुजरात द्वारा अपनी शक्तिके अनुसार चंदा इकट्ठा करनेकी शुरुआत होने पर विद्यार्थी भी अपना चंदा इकट्ठा करने लगे। उन्होंने अध्यापकोंको भी उसमें भाग लेनेकी प्रेरणा दी। कुछ ही दिनोंमें रु० ११०० की रक़म जमा हो गई। उसी समयसे विद्यार्थी लगभग नियमित कताई भी करते थे। रु० ११०० की थैली तथा बादमें उसमें जोड़ी गई रु० १२९ की रक़म, गांधीजीके उपयोगके लिए विद्यार्थियोंके हाथकते सूतके बुने हुए कपड़ेके कच्छ और चद्दर तथा इस मौक़ेके लिए प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा काता हुआ कमसे कम पाँच तोला सूत भेंट करनेके लिए गांधीजीको ता० ८-८-१९२४ की सुबह गूजरात महाविद्यालयमें निमंत्रित किया गया। उस मौक़े पर गांधीजीने नीचेका भाषण दिया।]

भाई कृपालानीने तुमको राजाका गीत सुनाया। लेकिन राजा अगर यह कह कर गया हो कि मैं छह बरसमें लौटूंगा और उसके बदले वह दो बरसमें ही आकर खड़ा हो जाये, तो दोष राजाका

है, प्रजाका नहीं। राजाको सोच लेना चाहिये कि प्रजाको तैयारीका समय नहीं मिला।

तुमसे बना उतना तुम दे चुके, लेकिन इसके बारेमें कुछ कहनेसे पहले मुझे एक फ़ैसला देना है। पक्षोंके नाम देनेकी ज़रूरत नहीं। तुम्हारे यहाँ सब उन्हें जानते ही होंगे। एक अध्यापकने पत्र लिख कर मुझसे पूछा है कि चरखा गांधीजीके लिए चलाया जाय या देशके लिए? यह सवाल आसान है। तुम विद्यालयमें शिक्षा लेते हो इसलिए यह समझते ही होगे कि हर चीज़के कमसे कम दो पहलू होते हैं। अच्छा और बुरा या तेज और मंदा। ये दोनों दृष्टियाँ सच्ची हो सकती हैं, अगर हम उन दोनों आदमियोंके अलग अलग दृष्टिकोणसे सोचें। जो आदमी गांधीके लिए सूत कातता है वह अपनी दृष्टिसे सच्चा है। जो आदमी देशके लिए कातता है वह भी सच्चा है, क्योंकि वह जानता है कि गांधी कल चला जायेगा। इसकी दृष्टि कुछ अधिक सच्ची कही जायेगी; क्योंकि पहले आदमीको नाश होनेवाली चीजके बारेमें मोह है, जब कि दूसरेको देशके लिए प्रेम है। और देश कोई क्षण भरमें नष्ट होनेवाली चीज़ नहीं है। हम अगर तलवारसे स्वराज्य लेंगे, तो उसकी रक्षाके लिए हमें तलवार ही रखनेकी ज़रूरत पड़ेगी। यह दुनियाका नियम है। इसलिए जब तक देश है तब तक चरखा है ही। इस दूसरी दृष्टिमें निर्मलता है; मोह नहीं है। एक तीसरी बात और है। हम खुद अपने लिए ही चरखा क्यों न चलायें? हम क़ुरबानी, त्याग वग़ैराकी जो बातें करते हैं, उनसे हम दुनियाको धोखा देते हैं। हमारा त्याग स्वार्थकी क़ुरबानी नहीं है; वह तो एक खेल है। हमारी अपनी इच्छा पूरी करनेका स्वार्थ उसमें रहा है। और 'देशके लिए' का अर्थ है हमारे लिए। हम अपने लिए अगर चरखा चलानेको तैयार हों तो उसे कभी नहीं छोड़ेंगे — जैसे खाना, पीना वग़ैरा शरीरके धर्मोंको हम छोड़ नहीं सकते। लेकिन ये तीनों दृष्टियाँ आदमीकी अपनी अपनी दृष्टिसे ठीक हैं।

"सुतर आवे तेम तुं रहे,
जेम तेम करीने हरिने लहे."

—'तुझे जिस तरह जीना आसान लगे वैसे तू जी; लेकिन किसी भी तरह तू ईश्वरको प्राप्त कर।' इस पदमें अखा भगतने जीवनका कर्तव्य हमें बता दिया है। चरखा मुझे धोखा देनेके लिए नहीं, देशको धोखा देनेके लिए नहीं या दूसरोंको धोखा देनेके लिए नहीं चलाना है, बल्कि अपने सन्तोषके लिए ही चलाना है। जब तक हम दंभसे काम नहीं करते तब तक हमारा हर काम चमकेगा ही। जितना शुद्ध ज्ञान हमें होगा उतना ही हमारा मोह कम होगा। परन्तु कोई अच्छा काम हम मोह या प्रेमसे करें, तो भी उससे लाभ ही होगा। पुत्रमें अपने पिताके प्रति मोह रहता है। मैं जो सच बोलना सीखा, उसमें मेरे पिताका कुछ हिस्सा है। उस समय मुझे यह भान नहीं था कि सच्ची बात ही उत्तम बात है। लेकिन मेरे मनमें मोह था कि पिताके लिए मुझे इतना करना चाहिये। माँके प्रेमके वश होकर मैंने मांस खाना छोड़ा था। माँके प्रेमके कारण मैं दुराचारी बननेसे बचा। वर्ना आज मैं दुनियामें एक बुरेसे बुरा आदमी होता। इस प्रकार मोहके वश होकर मैं ऊँचा उठा, लेकिन ऊँचा उठा यह तो कौन कह सकता है? मैं तो नीचे गिरते गिरते बचा। माता-पिताके प्रेमके वश होकर, व्रतके वश होकर मैं बच गया। व्रत तो इस जिंदगीमें मेरा सहारा है। कहनेका मतलब यह कि आदमी शुभ कार्य अनेक भावनाओंसे करता है। तुमने जो झगड़ा उठाया है उसके खड़े होनेकी जरूरत ही नहीं थी। यह बात बिलकुल ठीक है कि हमें कातना ही चाहिये। मुझे पाँच तोला सूत देकर तुम लोग चरखा फेंक दो यह ठीक नहीं; उसमें तुम्हारा पतन है। चरखा तो चलता ही रहना चाहिये। तुम्हारी भावना कैसी है इसी पर चरखेका निभना या नाश होना निर्भर करता है।

महाविद्यालयके विद्यार्थियोंको कुछ बातें समझ ही लेनी चाहिये। जिन बातों पर इस विद्यालयका पाया रचा गया है उन्हें इस संस्थामें सीखने आनेवाले सब लोग जान लें। उनके बिना यह राष्ट्रीय महाविद्यालय राष्ट्रीय नहीं रहता। स्वराज्यके जिन जिन साधनोंकी कल्पना की गई है उन्हें हमें समझ लेना चाहिये। उन्हें समझ कर अगर हम उन पर अमल न करें तो दुनियाको धोखा देंगे। विद्यालयमें आकर हमने खूब विद्या प्राप्त की हो, अंग्रेज़ीका बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त किया हो, संस्कृतके उच्चारण हम इतने सुन्दर करते हों कि काशीके पंडित भी हमें नमस्कार करें, तो भी इन सबकी कोई क़ीमत नहीं। इस विद्यालयसे तुम्हें ये चीज़ें नहीं सीखनी हैं। यहाँसे तुम्हें कुछ ऐसी बातें लेनी हैं, जो दुनियादारीकी इन बातोंसे परे हैं। ये बातें दूसरी सब बातोंसे ऊँची हैं, श्रेष्ठ हैं। ये हैं: चरखा चलाना, अछूतोंको गले लगाना और हिन्दू-मुसलमान-पारसी क़ौमोंकी एकता साधना। तुम किसी अछूतके लड़केसे मिले हो? किसी मुसलमान या पारसी लड़केसे गले मिलते हो और उन्हें समझाते हो कि इस महाविद्यालयमें उनके लिए भी जगह है? उन्हें महाविद्यालयमें आनेकी बात समझाते हो? इतना सब करनेके बाद भी अगर वे न आयें, तो फिर दोष तुम्हारा नहीं है, विधिका ही है।

बाहरका कोई आदमी तुम्हारी परीक्षा लेने आये तो वह तुम्हारे अंग्रेज़ी, गुजराती या संस्कृतका ज्ञान बतानेवाले जवाबोंसे मोहित नहीं होगा। वह तो दूरसे ही देखेगा कि तुम्हारे यहाँ चरखा चलता है या नहीं? अस्पृश्यताका बहिष्कार हुआ है या नहीं? चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता — ये सब अंग किसी भी देखनेवालेको यहाँ फूले-फले दिखाई पड़ने ही चाहिये। इनको छोड़कर दूसरी चीज़ोंसे तुम परीक्षामें पास हो जाओ, तो उसका कोई महत्त्व नहीं। मैं तो कहूँगा कि इतने बरस तुमने इस महाविद्यालयमें बेकार ही गँवाये।

तुम जो काम कर रहे हो उसके लिए मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ। अब तुम एक क़दम आगे बढ़ो, वर्ना देशको और तुमको शरमाना पड़ेगा। तुम देशके ऐसे सेवक बन जाओ कि देश तुम पर गर्व कर सके। मैं तो गूजरात महाविद्यालयसे ज्यादासे ज्यादा आशा रखता हूँ। तुम सोचकर देखो कि हमने महाविद्यालय पर कितने पैसे ख़र्च किये हैं। इस पर ९० फ़ी सदी पैसे खर्च किये गये हैं। इस ख़र्चके आँकड़े लेकर हिसाब निकालना कि एक विद्यार्थी पर हमने कितना ख़र्च किया है। इसे जानकर जैसे मैं काँप उठूँ वैसे ही जनता भी काँप उठेगी। हम पर ख़र्च की गई रक़मके बदलेमें हमने देशको क्या दिया, इसकी बेचैनी तुम्हारे मनमें होनी ही चाहिये। भविष्यकी पीढ़ी अगर हमारे कामसे संतोष न माने, तो यह महाविद्यालय छोड़ देनेमें ही तुम्हारी शोभा है। तुम समझकर इस बातके लिए तैयार हो जाओ कि असहयोगमें तुम स्वराज्यकी सिद्धिके स्थायी अंगोंको ज़रूर अपना बना लोगे। इस बातको समझ लेने पर ही तुम लायक बनोगे। तुम्हारे पीछे जितना पैसा ख़र्च किया गया है उससे तुम्हें अपार बल मिलेगा। जिस तरह खेतमें बीज फल देता है उसी तरह तुम पर ख़र्च किये गये पैसे भी फल देंगे। तुम्हारे मित्र, विद्यार्थी और कुलपतिके नाते मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे सामने दो ही रास्ते हैं। तुम्हें ये दो ही चीज़ें स्वीकार करनी हैं। कुलपतिके लिए तुम सूत दो यह एक बात है और मेरे संतोषके लिए सूत दो यह अलग बात है। मेरे लिए तुम्हें श्रद्धा हो और मेरे प्रति प्रेम या मोहके कारण तुम ऐसा करो यह तो ठीक है। लेकिन मुझे संतोष देनेके लिए तुम ऐसा करो यह अलग बात है। चरखेमें तुम्हारी श्रद्धा होने पर भी तुम न कातो और मैं आकर तुम्हारा आलस छुड़ाऊँ, और मेरे ख़ातिर तुम आलस छोड़ो तो यह अच्छी बात है। है। लेकिन जिस चीज़में तुम्हारी श्रद्धा ही न हो उसे तुम केवल मुझे संतोष देनेके लिए ही करो, तो वह बहुत बुरी बात है। उसमें ढोंग और धोखा है, उसमें कपट है।

देशके खातिर चरखा चलना चाहिये, ऐसा कहनेवाले अध्यापकने इसी अर्थमें अपनी बात कही होगी।

हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी सब तुम्हारे भाई हैं — ऐसी श्रद्धा तुममें न हो और उसके अनुसार चलनेकी तुम्हारी तैयारी न हो, तो तुम महाविद्यालय छोड़ सकते हो। तुम अपने रास्ते जाना; विद्यापीठ अपने कार्यकी दिशा तय कर लेगा।

यह बात कहते कहते मुझे महाविद्यालयका मकान याद आ गया। वहाँ बहुतसे अछूत मजदूर काम करते हैं और उन्हें पानीकी तकलीफ़ होती है। तुममें ताक़त हो तो दूसरे मज़दूरोंके जाना चाहने पर उन्हें जाने देकर तुम स्वयं ही अछूतोंके साथ काम करने लग जाओ। लेकिन मैं देखता हूँ कि तुम्हारे पास ऐसे शरीर नहीं हैं, ऐसा प्रेम नहीं है। ऐसे मौक़े पर तुम अछूतोंको और दूसरे मज़दूरोंको भी पानी देनेकी व्यवस्था करो। तुम कहोगे कि मज़दूरी करते करते हमारे हाथ रह जायें, तो फिर पढ़ाईके लिए हम समय कहाँसे निकालें? मैं तो कहता हूँ कि कृपालानीसे कहकर तुम पढ़ाईका समय भी निकाल सकते हो। तुम ऊँची जातिके मज़दूरोंसे पानी खिंचवा कर अछूतोंको पिलानेकी बात उन्हें समझा सकते हो और उन्हें कह सकते हो कि अपनेसे नीची जातिके मज़दूरों पर तुम्हें दया न आये तो हम ख़ुद पानी भर देंगे। इस तरह तुम उन्हें दयाका और सत्याग्रहका सबक़ सिखा सकते हो। तुम कमसे कम इतना तो करो कि अछूतोंको नहला कर और खिलाकर ही खुद खाओ। हम जंगलमें, अधूरे मकानमें रहेंगे, लेकिन अछूतोंका त्याग कभी नहीं करेंगे और ऐसा करके ऊँची जातियोंके ज़ुल्मोंको दूर करेंगे। यह शिक्षा तुम्हें अध्यापक नहीं दे सकेंगे, किताबोंसे भी नहीं मिल सकेगी; अगर वे देंगे तो अपने चरित्रसे तुम्हारे सामने मिसाल रखकर ही दे सकेंगे। विद्यापीठकी स्थापनाके समय मैंने कहा था कि यह संस्था अगर अक्षर-ज्ञानके लिए ही हो, तो मैं इसका कुलपति बनने लायक नहीं हूँ। विद्यार्थियोंका चरित्र-बल बढ़ानेकी दृष्टिसे ही विद्यापीठ

वग़ैरा संस्थायें खड़ी की गई हैं। तुम्हें इस बातकी याद दिलाना मेरा कर्तव्य है; और तुम इस अनिवार्य अंगको स्वीकार करो और इसकी आबरूको बढ़ाओ।

तुम्हारे चरखे अगर धूप और बरसातमें पड़े रहें, तो तुम समझना कि तुम पाप कर रहे हो। विज्ञानकी प्रयोगशालामें तुम अपने साधनों और औज़ारोंको कितने साफ़ और स्वच्छ रखते हो? तुम्हारे चरखे भी उतने ही साफ़-स्वच्छ दिखाई देने चाहिये। मैं यह आशा ज़रूर रखूँगा कि तुम्हारे पास उत्तम तकुए, उत्तम चमरखे, उत्तम रुई और उत्तम पूनियाँ वग़ैरा हों। इन चीज़ोंके लिए तुम आश्रमसे आशा रखो यह ठीक नहीं, क्योंकि तुम लोग तो 'विशारद' कहे जाते हो। अगर तुमसे मैं यह आशा न रखूँ, तो और किससे रखूँ? ये सब चीज़ें स्वतंत्र रूपसे प्राप्त कर लेने जितना स्वाभिमान तो तुममें होना ही चाहिये।

मलाबारमें प्रलयसे दुःख भोग रहे लोगोंका संकट दूर करनेके लिए मददकी माँग करते हुए गांधीजीने विद्यार्थियोंसे कहा:

तुम कम खाकर पैसे दो। अपना दूध कम करके पैसे दो। अगर समय गँवाते हो तो उस समयमें सूत कातकर पैसे दो। तुम ख़ुद पैसे दो और पैसे उगाहनेके लिए निकल पड़ो और अपनी ज़िम्मेदारी पर जितने पैसे इकट्ठे कर सको उतने करो। हम राष्ट्रके लिए मरना सीखें, राष्ट्रके लिए प्रेम और भक्ति बढ़ायें, इसीमें राष्ट्रीय शिक्षा है। दूसरे लोग गीलेमें सोते हों तो उन्हें सूखेमें सुलाकर ख़ुद गीलेमें सोनेका जो मातृप्रेम कवि दलपतरामने हमें बचपनमें सिखाया है, वह हमारे भीतर हो तो ही राष्ट्रसेवा हो सकती है। अपनी बची हुई चीज़ोंमें से अगर तुम दोगे तो उसकी कोई क़ीमत नहीं। असुविधा और तकलीफ़ उठाकर दो। ऐसा करनेमें तुम्हारा शुद्ध प्रेम होगा; ढिंढोरा पीटनेकी बात नहीं होगी।

५

तीसरा पदवीदान-समारंभ

[पहले दो पदवीदान-समारंभोंके समय गांधीजी जेलमें थे इसलिए दोनों उनकी ग़ैर-हाज़िरीमें हुए। तीसरा पदवीदान-समारंभ ता० १४-१-१९२५ को हुआ। उस अवसर पर नये स्नातकोंको पदवी-पत्र देनेके बाद गांधीजीने नीचेका भाषण दिया।]

तुम विद्यार्थियोंने आज जो पदवी प्राप्त की है उसके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ और आशा रखता हूँ कि तुमने जो प्रतिज्ञा ली है उसे तुम पूरा करोगे। ऐसे मौक़े जब जब आते हैं तब तब सामान्य संस्थाओंमें यह बताया जाता है कि इस वर्ष विद्यार्थियों और शिक्षकोंकी संख्या बढ़ी है, हर तरहसे संस्थाका कार्य आगे बढ़ा है। आज महामात्रने रिपोर्ट पढ़ी उस समय हमने देखा कि इस विद्यापीठके चार वर्षके कार्यकालमें संख्या घटती गई है। आम तौर पर इससे निराशा ही होती है। लेकिन मुझे निराशा नहीं हुई। इतना मैं क़बूल करता हूँ कि अगर हम विद्यार्थियोंकी संख्या अधिक बता सके होते या दूसरी तरह दुनिया जिसे उन्नति कहती है वह उन्नति बता सके होते तो मुझे खुशी होती। आजकी हालतसे मुझे खुशी होती है, ऐसा मैं नहीं कह सकता। लेकिन मैं निराश नहीं हूँ। मैंने और दूसरे बहुतसे लोगोंने ऐसी उम्मीद ज़रूर रखी थी कि यह काम हमें एक वर्ष तक ही चलाना पड़ेगा और एक वर्षके अन्तमें तो जिन शिक्षा-संस्थाओंको तुमने छोड़ दिया था उन्हीं संस्थाओंमें फिरसे तुम शिक्षा लेने लगोगे। लेकिन एक वर्षके बदले चार वर्ष चले गये और अब आगे कितने वर्ष तक यह देश-निकाला भोगना पड़ेगा यह कहा नहीं जा सकता। मैं तो अब ऐसी राय रखने लगा हूँ कि यह देश-निकाला ही नहीं है। शायद

स्वराज्य मिल जानेके बाद भी ऐसी कितनी ही संस्थायें सरकारसे स्वतंत्र रहकर चलती रहेंगी। उस समय फ़र्क इतना ही होगा कि इन संस्थाओंको सरकारी संस्थाओंके साथ होड़ नहीं करनी पड़ेगी, सरकारी संस्थायें विरोधी नहीं मानी जायेंगी, छोड़ने लायक नहीं मानी जायेंगी। लेकिन उस समय भी अनेक प्रयोग तो होते ही रहेंगे और उनमें ऐसे विद्यापीठोंका और महाविद्यालयोंका भी स्थान होगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जो विद्यार्थी महाविद्यालयमें और विद्यापीठके मातहत पढ़ते हैं, वे किसी भी तरह निराश नहीं होंगे और यह नहीं मानेंगे कि यहाँ जितने बरस हम पढ़े वे सब बेकार गये।

आज सुबह मैं आश्रम पहुँचा तब वहाँ मुझे एक पोस्टकार्ड मिला। उसमें इस महाविद्यालय पर कई आरोप लगाये गये हैं। पोस्टकार्ड पर किसीका नाम नहीं है। मैंने 'नवजीवन' में कई बार यह टीका की है कि कोई भी आदमी बिना नामका पत्र न लिखे। इसमें बेइज़्ज़ती है, एक प्रकारकी कायरता है, जिसे हमें छोड़ देना चाहिये। जिन विचारोंको दुनियाके सामने ज़ाहिर करनेकी हममें हिम्मत न हो उन्हें भूल जाना, दफ़ना देना ही अच्छा है। फिर भी यह रिवाज इस देशमें कितने ही बरससे चलता आया है, और शायद आगे भी चलता रहेगा। इसलिए वह बिना नामवाला कार्ड मैं पढ़ गया। उसमें पूछा गया है कि आप महाविद्यालयको बंद क्यों नहीं कर देते? आपकी आँखें क्यों नहीं खुलतीं? विद्यार्थी आपको भुलावेमें डालते हैं। बहुतसे विद्यार्थी यहाँसे निकलनेके बाद सरकारी संस्थाओंमें चले जाते हैं। आप चाहे जो मानते हों, लेकिन विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोंकी चरखे पर ज़रा भी श्रद्धा नहीं है। इसलिए आप विद्यापीठ और उसकी सब संस्थाओंको बन्द कर दीजिये। मुझे यह सलाह मंज़ूर नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम भी इसे मंज़ूर न करो। दुनियामें हर प्रवृत्तिमें कितने लोग काम करते हैं, उसमें कितना पैसा ख़र्च होता है, इसके आधार पर उसकी क़ीमत नहीं आँकी जा सकती। इस तरह हिसाब करने लगें तो

में फँसनेका डर रहता है। इस देशमें आज आत्मशुद्धिका कार्य चल है — क्योंकि असहयोगको हमने आत्मशुद्धि कहा है; ऐसे समय यहाँ विद्यार्थियोंकी संख्या बढ़ेगी ही, यह मानना ग़लत है। बढ़े तो अच्छा है, न बढ़े तो हमें श्रद्धा रखनी चाहिये और क हममें विश्वास है तब तक हमें यह काम करते रहना चाहिये।

विद्यार्थियोंकी चरखे पर ज़रा भी श्रद्धा न होनेकी बात अगर हो, तो यह दुःखकी बात है। जिसकी श्रद्धा चरखे पर न हो उसे पीठका त्याग ही कर देना चाहिये। कांग्रेसने राष्ट्रीय शालाओंके जो प्रस्ताव पास किया है वह तुम्हें याद होगा ही। उसे मैं यहाँ याद कराता हूँ। उस प्रस्तावमें राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाकी जो ा की गई है उसके लिए वहाँ इकट्ठे हुए लोगोंका विरोध नहीं विरोध मनमें था फिर भी किसीने बताया नहीं — ऐसा मानना लए, उन सबके लिए और देशके लिए भी बेइज्ज़तीकी बात होगी। सारे बुद्धिमान आदमी, स्वतंत्र आदमी, अनुभवी और बुज़ुर्ग आदमी मति दें, वह सच्ची नहीं होगी, हृदयसे दी हुई नहीं होगी — यह मान सकता हूँ? इसीलिए मैं कहता हूँ कि राष्ट्रीय शिक्षण-की उस व्याख्यासे हजारों आदमी सहमत थे। अब काठियावाड़ ने भी उस व्याख्याको मान लिया है। उस व्याख्यामें क्या वही शाला राष्ट्रीय विद्या-मंदिर मानी जा सकती है, जिसमें की प्रवृत्ति चलती है, जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी रोज़ आधा चरखा चलाते हैं और दोनों हाथोंसे कती-बुनी खादी ही पहनते जसमें मातृभाषा या हिन्दुस्तानीके ज़रिये शिक्षा दी जाती है, कसरतके लिए पूरी गुंजाइश है, जिसमें खुदकी रक्षा करनेकी भी सिखाई जाती है, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक-बनानेकी कोशिश की जाती है और जिसमें अछूतोंका किसी रह त्याग नहीं किया जाता। राष्ट्रीय विद्या-मंदिरकी यह व्याख्या ने की है। इसलिए अगर मैं इस समय यह कहूँ कि जिसकी

चरखे पर श्रद्धा न हो, उसे विद्यापीठके मातहत चलनेवाली सारी संस्थायें छोड़ देनी चाहिये, तो तुम ऐसा न मानना कि मैंने कोई विशेष बात कही है। इसीमें हमारी उन्नति है। ऐसा करनेसे इसका पता चल जायगा कि हम किस दिशामें जा रहे हैं और हमारे साथ कितने स्त्री-पुरुष तथा विद्यार्थी और विद्यार्थिनियाँ हैं।

'साबरमती' में निकले एक लेखमें की गई टीकाकी ओर मेरा ध्यान खींचा गया है। उसमें बताई हुई कुछ शंकायें ग़लत हैं, क्योंकि उसमें जिन विचारोंको मेरा बताया गया है वे विचार मैंने पेश किये ही नहीं हैं। विद्यार्थियोंको अपना सारा ही समय चरखेके लिए देना चाहिये, ऐसा मैंने कभी नहीं कहा। ऐसे विचार मेरे हैं ही नहीं, यह मैं नहीं कहता। अगर मैं विद्यार्थियोंको और देशको समझा सकूँ कि ऐसा करना ही देशके लिए उत्तम होगा, तो मैं ज़रूर कहूँ कि तुम अपना सारा समय चरखा चलानेमें ही लगाओ। लेकिन आज मैं देशको यह बात नहीं समझा सकता। आज तो मैं ख़ुद ऐसा नहीं कर सकता। मैं ख़ुद अगर सारे समय चरखा चला सकूँ, तब तो देशसे और विद्यार्थियोंसे भी ऐसा करनेको कहूँ। मेरा आदर्श ज़रूर है कि मैं हिन्दुस्तानको यह दिखा सकूँ कि चौबीसों घंटे चरखा चलानेमें ही शुद्ध विद्या समाई हुई है। वैसे तो किसी भी शुद्ध चीज़को लेकर बैठें और उसमें एकरस हो जायें, तो उसमें शुद्ध विद्या है ही; क्योंकि उसमें हम योगकी साधना करते हैं। लेकिन इस समय मैं यह बात नहीं कहता। इस समय तो मैं विद्यार्थियोंसे इतना ही कहता हूँ कि तुम श्रद्धासे, आनंद लेकर चरखा चलाओ, बढ़िया सूत कातो, चरखा चलानेका शास्त्र सीख लो और दूसरी विद्याओंके लिए जो उत्सुकता और प्रेम रखते हो वही इसके लिए भी रखो। बाकीका सारा समय तुम दूसरे विषयोंमें लगाओ, तो मेरा कोई विरोध नहीं है। मेरी तो इतनी ही माँग है कि तुम जो कुछ करो श्रद्धासे करो, बेगार न टालो।

दूसरा आरोप यह है। एक बार मैंने कहा था कि विद्यापीठको ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करके उसपर अमल करना चाहिये, जिससे तुम्हें गुज़ारेका साधन मिले। यह बात आज भी मैं कहता हूँ। लेकिन विद्यापीठके लिए और तुम्हारे लिए यह मुख्य विषय नहीं है, होना भी नहीं चाहिये। विद्याको अगर तुम सिर्फ़ गुज़ारेका साधन ही मानने लग जाओ, तो शायद तुम नीचे भी गिर जाओ। विद्यापीठने विद्याकी जो व्याख्या स्वीकार की है वह इस प्रकार है: 'जो मुक्ति दे वह विद्या है।' इसलिए ऐसा आदर्श रखनेवाली संस्थामें सिर्फ़ गुज़ारेको ध्यानमें रखकर विद्या लेना ठीक नहीं। गुज़ारेके लिए तो अनेक साधन हैं। विद्या शरीर, मन और आत्माकी उन्नतिके लिए है। जिसके अंग सुडौल हैं, जिसका शरीर स्वस्थ और मज़बूत है, जो सख्त सरदी-गरमी सहन कर सकता है, जिसका मन सोचा हुआ काम कर सकता है, जो संयमी है, जिसकी आत्मा शुद्ध है — इतनी शुद्ध कि जो ऐसा कह सके कि मैं अपने हृदयकी ही आवाज़ सुनूँगा, और आत्माका स्थान हृदय है इसलिए हृदय भी शुद्ध होना ही चाहिये — उसने सच्ची विद्या प्राप्त की है। ये तीन चीज़ें जिसने प्राप्त कर ली हैं, उसे गुज़ारेकी विद्या सीखनेकी ज़रूरत क्यों होनी चाहिये, उसे गुज़ारेकी चिन्ता क्यों होनी चाहिये? ऐसे विद्यार्थीको तो विश्वास होगा कि जिस ईश्वरने दाँत दिये हैं वह रूखा-सूखा खानेको भी देगा ही। मुझसे कहा जाता है कि विद्यार्थियोंको घरबार सँभालना होता है, उन्हें दो-दो तीन-तीन आदमियोंका गुज़ारा करना होता है। भले ही उन्हें इतनोंका गुज़ारा करना पड़ता हो, गुज़ारा उन्हें करना चाहिये और ऐसा करनेमें उनकी बहादुरी है। लेकिन ऊपर बताये साधन प्राप्त करनेसे ही रोज़ी मिल जाती है, रोज़ी ढूँढ़नेसे नहीं मिलती। . . . जो आदमी विद्याको सिर्फ़ रोज़ीका साधन मानता है उसे रोज़ी भी नहीं मिलती। रोज़ीकी व्यवस्था तो विद्यापीठ आज भी कर रहा है। विद्यापीठ अगर तय कर दे कि विद्यार्थी पढ़कर निकला कि उसे तीन

— ४

सौ या तीस रुपयेकी तनख्वाह मिलने लगेगी, ऐसा दस्तावेज़ अगर विद्यापीठ तुम्हें लिख दे, तो तुम लोग अपंग और लाचार बन जाओगे। फिर तुम देशकी सेवा नहीं कर सकोगे, तुमसे मेहनतका काम भी नहीं होगा। विद्यापीठ तो केवल तुम्हें मुसीबतोंके सामने टिके रहनेकी और उनसे बाहर निकलनेकी शक्ति दे सकता है। सच पूछा जाय तो विद्यापीठ तुम्हें कुछ नहीं दे सकता; तुम्हारे भीतर जो कुछ होगा उसका विकास ही वह कर सकता है। इसलिए तुम ऐसा मानने लग जाओ कि विद्यापीठमें आकर तुमने न तो कुछ खोया है और न आगे कुछ खोनेवाले हो।

विद्यापीठ और महाविद्यालयका भविष्य क्या है और दोनोंको किस मार्ग पर ले जाना चाहिये, इस बारेमें कुछ बतानेके लिए महा-मात्रने मुझसे कहा है। इस बारेमें कुछ भी बताना मेरी शक्तिसे बाहर है। मैं नहीं जानता कि इस साल हिन्दुस्तानका वातावरण कैसी शकल पकड़ेगा। मेरी आशायें तो बहुत हैं। मैं आशावादी हूँ और मरते दम तक आशावादी बना रहूँगा। लेकिन इस समय उन आशाओंको तुम्हारे सामने रखूँ, यह ठीक नहीं होगा। तुमसे तो मैं इतना ही कहूँगा कि तुम इस झंझटमें मत पड़ो कि विद्यापीठका भविष्य क्या होगा। तुम इतना विश्वास कर लो कि तुम्हारा विद्यापीठमें रहना बिल-कुल ठीक है। सरकारी शालाओंमें तुम्हारा जाना ठीक नहीं है; और सचमुच जो शिक्षा मिलनी चाहिये वह आजकी हालतमें वहाँ तुम्हें नहीं मिलेगी। जब तक तुम्हारे मनमें यह भाव रहे कि सरकारी शालाओंमें हिन्दुस्तानको जो मिलना चाहिये वह नहीं मिला है और न आगे मिलनेवाला है, तभी तक तुम विद्यापीठमें रहो। अगर तुम्हें ऐसा लगे कि सरकारी शालाओंमें यह सब मिल जाता है, तो तुम्हारा सरकारी शालाओंमें जाना ही अच्छा है। तब तुम इसकी लम्बी-चौड़ी चर्चामें मत पड़ो कि विद्यापीठका भविष्य क्या होगा। सरकारी शालाओंके बारेमें तुम्हारे मनमें पक्की अरुचि पैदा हो जानी चाहिये। अरुचि पैदा

हुई कि उन शालाओंके बारेमें तुममें त्यागका भाव पैदा होगा, रागका नहीं। जब तक रागका भाव रहेगा तब तक तुम विद्यापीठकी तुलना सरकारी शालाओंसे करते ही रहोगे। हर बार तुम्हारा मन कहेगा कि वहाँ जितनी सुविधायें हैं उतनी यहाँ नहीं हैं। विद्यापीठमें सुविधायें नहीं हैं, यही उसकी ख़ासियत है। यहाँ अगर सुविधायें पैदा करें तो हम मुसीबतोंको पार करना नहीं सीखेंगे। या ऐसा कहें कि यहाँ दूसरी तरहकी सुविधायें हैं। यहाँ कुछ विशेषता तो होनी ही चाहिये। सरकारकी शालाओंके साथ इस विद्यापीठकी शालाओंकी तुलना हो ही नहीं सकती। इतना ही अगर तुम्हारे मनमें दृढ़ हो जाय तो विद्यापीठका भविष्य क्या होगा, इसकी चिन्ता तुम्हें नहीं होनी चाहिये। अपने कर्तव्यका पालन करके हमने स्वराज्यकी लड़ाईमें पूरी मदद की, यह तुम कह सको तो काफ़ी है। इससे ज़्यादा जाननेका तुम्हें और मुझे हक़ नहीं है। मैं तो इतना जानता हूँ कि जब तक विद्यापीठ स्वराज्यकी लड़ाईके लिए मददगार है तब तक वह टिकेगा; जब वह स्वराज्यकी लड़ाईके लिए मददगार नहीं रहेगा तब उसका नाश हो जायगा। और नाश हो जाय तो इसमें बुरा क्या है? उसका नाश होना उचित ही है। हिन्दुस्तानके स्वराज्यका भविष्य ही विद्यापीठका भविष्य है।

हमें जो बात पसन्द आये वह हमेशा ही हमारा भला करनेवाली नहीं होती। मैं बूढ़ा हो गया हूँ तो भी मुझे लगता है कि जो कुछ मुझे अच्छा लगता है वह सब मेरा भला करनेवाला नहीं होता। इसलिए अनेक बातोंमें हमें बड़ोंकी सलाह लेनी पड़ती है। इसीलिए हमारे यहाँ गुरुको खोज कर उसकी शरण लेनेकी पुरानी प्रथा चली आई है। गुरुका आधार लेकर, उनकी गोदमें सिर रखकर कहा जाता था कि अपनी इच्छाके अनुसार आप मुझे चलाइये, आपको जो अच्छा लगे वह मेरे दिमाग़में भरिये। आज तो गुरु कहीं भी नहीं मिल सकते, इसलिए आज सब-कुछ गुरुको अर्पण करनेकी बात पैदा नहीं होती। यहाँ तो इतनी ही श्रद्धा रखनेकी ज़रूरत है कि शिक्षक हमें सच्चा

रास्ता दिखाते हैं, बुरा रास्ता नहीं। अनेक बातें शुरूमें कड़वी लगती हैं, परन्तु अंतमें वे अमृत सिद्ध होती हैं — ऐसी श्रद्धा रखकर तुम कड़वे घूँट भी पी जाना। यह मेरी तुम्हें सलाह है और यह मेरी तुमसे विनती भी है।

अब मैं फिरसे उस प्रतिज्ञा पर आना चाहता हूँ, जो तुमने अभी ली है। भाई आठवलेने जो प्रार्थना पढ़ी उसकी ओर भी तुमने ध्यान दिया होगा। दोनों चीज़ें बहुत मामूली थीं। जो चीज़ मामूली होती है उसमें कितना ज़ोर होता है, यह हम समझ नहीं पाते। किसी कमरेमें बैठकर चित्रकारने जो निकम्मा-सा चित्र बनाया हो उसे देखकर हम वाह वाह करते हैं, क्योंकि हमें ऐसी आदत ही पड़ गई है। लेकिन हमारे सिर पर जो भव्य सुन्दर चित्र हमेशा दिखाई देता है, उसकी क़दर कोई नहीं करता। यह विशाल आकाश और उसमें जगमगाते तारे और चांद, सूर्यके उदय और अस्तके समय पैदा होनेवाले अनेक रंग — यह सब कौनसा चित्रकार चित्रित कर सकता है? फिर भी हम इन सब पर कोई ध्यान नहीं देते। इसकी वजह यह है कि हमारी नज़र हमेशा नीचे ही रहती है और बाहरके धूल जैसे चित्र पर हम मुग्ध हो जाते हैं। हमारी यह दयावनी हालत है। इसीलिए संभव है कि आज जो प्रार्थना तुमने सुनी और जो प्रतिज्ञा महामात्रने तुम्हें सुनाई, उसका गहरा अर्थ तुम न समझ पाये हो। तुम बार बार इन दोनों पर विचार करना और प्रतिज्ञाका पालन करना। इस प्रार्थनामें कहे गये भव्य मंत्रोंसे हमें सहायता मिलती है; यह सहायता भाषणों और लेखोंसे नहीं मिलती। वह माताके दूध जैसी क़ुदरती ख़ुराक है। माँ बच्चेको दूध न पिलाये और दूसरी कोई स्त्री उसके लिए तरह तरहकी ख़ुराककी व्यवस्था करे, तो उसका क्या नतीजा होगा? कोई बच्चा ज़िन्दा न रहेगा। ये मामूली चीज़ें ही अमृतके समान हैं। और अपने पुरखोंकी इस विरासत पर हम सोचें-विचारें, उसे हृदयमें उतारें और उसके अनुसार बरताव करें, तो हमारा जीवन

सफल हो जाय। मेरे भाषणको तुम भूल जाओ, दूसरा सब कुछ भूल जाओ, लेकिन इस प्रार्थनाके मंत्रोंको और अपनी प्रतिज्ञाको न भूलो, तो कहा जायगा कि तुम्हारा और मेरा समय बेकार नहीं गया।

प्राणजीवन विद्यार्थी-भवन

डॉ० प्राणजीवन मेहताके ढाई लाख रुपयेके दानसे बने हुए महाविद्यालयके भवनको खोलते हुए गांधीजीने डॉ० प्राणजीवन मेहताके बारेमें कुछ अवसरके योग्य बातें कहीं और उनके साहसी तथा परोपकारी जीवनसे प्राण —— जीवन प्राप्त करनेका उपदेश दिया। डॉ० मेहताकी पहचान कराते हुए गांधीजीने कहा :

हम दोनों बालमित्र हैं। डॉक्टरने जिन्दगीमें बहुत-कुछ देखा और अनुभव किया है। उन्होंने जीवनमें साहस और परोपकारके अनेक काम किये हैं। उन्होंने नाम पानेके लिए इस मकानको अपना नाम देनेकी इच्छा रखी हो ऐसा बिलकुल नहीं है। मैं यह मानता ही नहीं कि उन्होंने जिन्दगीमें नाम पानेके लिए कोई काम किया हो। लेकिन मित्रोंने सोचा कि इस मकानके साथ उनका नाम जुड़े तो लोगोंको भी कोई सबक़ सीखनेको मिलेगा। आज डॉ० प्राणजीवन अपंग हैं। मेरी प्रार्थना है कि वे दीर्घायु हों, ताकि वे अधिक देशसेवा कर सकें। डॉ० मेहता ऐसे आदमी हैं जिनके बारेमें सबको जानना चाहिये। उन्होंने मेडिकल कॉलेजमें अभ्यास करके सोनेका पदक प्राप्त किया था। उसके बाद अधिक अभ्यासके लिए वे विलायत गये। वहाँ डॉक्टर भी बने और बैरिस्टर भी बने। और अब तुम्हें शायद पता नहीं होगा कि वे हीरेके व्यापारी हैं। वे दीवान भी हुए थे और उन्होंने जहाज़ बनानेका धंधा भी किया था। यह सब तुम्हें इसीलिए कह रहा हूँ कि आदमी इरादा कर ले तो सब कुछ कर सकता है। उन्हें न तो बैरिस्टरीका मोह था और न डॉक्टरीका मोह था। उन्होंने ईमानदारीसे धन कमाया और अपनी कमाईका बड़ा भाग देशके लिए ख़र्च किया है। उनके नाम और कामकी बात मैंने तुम्हारे सामने इसलिए की है कि मैं

चाहता हूँ कि तुममें से अनेक विद्यार्थी डॉ० मेहता बनें तथा अपनी विद्या और धनका उपयोग देशके लिए करें।

६

चौथा पदवीदान-समारंभ

[ता० ५-१२-१९२५ को चौथे पदवीदान-समारंभके समय विद्यार्थियोंको पदवियाँ देनेके बाद श्री कुलपतिजीने नीचेका अपना छोटासा भाषण पढ़वाया। उस समय उन्होंने जो उपवास किया था उसके बाद दिये गये हर भाषणका यह एक सामान्य लक्षण था।]

जिन जिन विद्यार्थियोंने पदवियाँ और इनाम पाये हैं, उन्हें मैं इस सफलताके लिए धन्यवाद देता हूँ। मैं उनकी लंबी उमर चाहता हूँ और चाहता हूँ कि वे इस मिले हुए पदवी-दानसे अपनी और अपने देशकी शोभा बढ़ायें।

चारों ओर फैली हुई निराशाकी अँधेरी रातमें हम अपना रास्ता न भूलें। आशाकी किरणके लिए हम बाहरी आकाशकी ओर नज़र न डालें, बल्कि अपने अंतरके आकाशमें उसे खोजें। जिन विद्यार्थियोंमें आत्म-विश्वास है, जिन्होंने डरको छोड़ दिया है, जो अपने कर्तव्यमें जुटे रहते हैं, जो कर्तव्यके पालनमें ही अपने हक़ोंको छिपा हुआ देखते हैं, वे विद्यार्थी बाहर फैले हुए अंधकारसे भयभीत नहीं होंगे, बल्कि यह समझेंगे कि अंधकार कुछ ही समय तक रहेगा — प्रकाश नज़दीक है।

असहयोगका अंत नहीं हुआ है। सहयोग और असहयोग सदासे चलते ही आये हैं। सच-झूठ, शांति-अशांति वग़ैराके जोड़ेको कौन झूठा साबित कर सकता है? अगर सचके साथ सहयोग करना ठीक है, तो झूठके साथ असहयोग है ही। अगर देशप्रेम प्रशंसाके लायक़ है, तो देशद्रोह निन्दाके ही लायक़ है। अगर स्वतंत्रताके साथ सहयोग

करना ठीक है, तो पराधीनताके साथ असहयोग होना ही चाहिये। इसलिए राष्ट्रीय शाला एक हो या अनेक, उसमें विद्यार्थी एक र य अनेक, हिन्दुस्तानके भावी इतिहासमें राष्ट्रीय शालाओंको आजादी पानेके साधनोंमें ऊँचा स्थान अवश्य मिलेगा।

हमारे ये साहस नये हैं। टीका करनेवाले लोग इनमें कई दोष देखेंगे। कुछ दोष तो हम खुद भी देख सकते हैं। उन सबको दूर करनेके लिए हमारे प्रयत्न चलते ही रहते हैं। मैं जानता हूँ कि हमारी व्यवस्थामें खामियाँ हैं। हम संचालकोंमें और अध्यापकोंमें कई कमियाँ हैं। इस बारेमें हम सावधान हैं और हमारी कमियाँ दूर करनेके लिए जो भी उपाय किये जा सकते हैं वे किये जायेंगे।

विद्यार्थियो, तुम धीरज रखना। तुम अपनेको स्वराज्यके सच्चे सेवक मानना। स्वराज्यके सेवकको शोभा न दे ऐसा एक भी काम न करना, एक भी शब्द न कहना, एक भी विचार न करना। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे!

७

पाँचवाँ पदवीदान-समारंभ

[ता० २८-११-१९२६]

गये वर्षकी तरह इस वर्ष भी मैं यहाँ हाज़िर रह सका हूँ, इसे मैं ईश्वरकी कृपा मानता हूँ। जिन जिन विद्यार्थियोंको प्रमाणपत्र और इनाम मिले हैं उन्हें मैं बधाई देता हूँ और चाहता हूँ कि उनके शुभ मनोरथ सफल हों। आजके मौक़े पर मुझे क्या कहना चाहिये, इसके बारेमें मैं परेशान था। इतनेमें श्री चिन्तामण वैद्य मेरी मुदद करने आ पहुँचे। इस हफ़्तेमें मुझे उनका पत्र मिला कि मैं एक कामके सिलसिलेमें वहाँ आ रहा हूँ। तुरंत मेरा बोझ हलका हो गया। यह संभव ही नहीं कि विद्यार्थी उनका नाम न जानें। उनकी विद्वत्ता

बारेमें सब कोई जानते हैं। उन्होंने महाभारत और हिन्दुस्तानके इतिहास पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। उन्होंने सिर्फ़ ग्रन्थ लिख कर ही नहीं बल्कि आम लोगोंके भलेके काम करके भी देशकी सेवा की है। जैसे गुजरातमें हमारा विद्यापीठ है वैसे महाराष्ट्रमें भी विद्यापीठ है। उसकी सेवा श्री वैद्य कर रहे हैं। वे उस विद्यापीठके कुलनायकके पद पर हैं। वहाँके कुलनायककी पदवी हमारे कुलनायकसे ज़्यादा ऊँची है। उसके कुलपति वहाँके शंकराचार्य हैं। यहाँ नानाभाई मेरे साथ सलाह-मशविरेका काम कर सकते हैं। लेकिन वहाँ सारी ज़िम्मेदारी वैद्यराज ख़ुद ही उठाते हैं। वे इस मौक़े पर जो कुछ कहेंगे वह सुनने लायक़ ही होगा। फिर भी मुझे कुछ बातें कहनी हैं।

तुम सब देख सकते हो कि संख्याकी दृष्टिसे विद्यापीठकी हालत बिगड़ती जा रही है। लेकिन मैं इससे ज़रा भी नहीं घबराता। १९२० में जब मैंने इस विद्यापीठकी शुभ स्थापना की उस वक़्त इसके कार्यके बारेमें मेरी जो श्रद्धा थी वही श्रद्धा आज भी है। मैं तो यह भी कहनेकी हिम्मत करता हूँ कि मेरी श्रद्धा ज़्यादा मज़बूत होती जाती है। दुनियामें संख्याबलके लिए स्थान है, लेकिन हमारे आंदोलनमें तो हमें गुणके बल पर ही ज़्यादा आधार रखना होगा। संख्याबल कम हो वहाँ परेशान होनेकी ज़रूरत नहीं; परन्तु ख़ास सावधानी तो रखनी ही चाहिये। आज हिन्दुस्तानमें मुट्ठीभर अंग्रेज़ अधिकारी राज करते हैं। वे कितना आत्म-विश्वास रखते होंगे? हिन्दुस्तानमें कुल २५० ज़िले हैं, इसलिए २५० कलेक्टर होंगे। एकके हिस्सेमें कितने आदमी आयेंगे? फिर भी ये कलेक्टर शामको टेनिस खेल सकते हैं और रातको आरामसे सो सकते हैं। जंगलमें भी उन्हें चिन्ता नहीं होती। हमें उनसे लड़ना है। इसलिए मुट्ठीभर होते हुए भी तुम उनके जैसा आत्म-विश्वास रखो। जहाँ हजारोंकी तादादमें

कार्यकर्ता हों वहाँ आलस या ग़फलत चल सकती है, लेकिन जहाँ उनकी तादाद कम हो वहाँ तो हरएकको ज़्यादा सावधान रहना चाहिये।

* * *

मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि विद्यापीठके भविष्यके बारेमें मुझे ज़रा भी चिन्ता नहीं। तुम अगर अपने काममें सावधान रहोगे, तो उसका भविष्य उजला ही है। विद्यापीठ तो एक विद्यार्थी होगा तो भी अपना काम करेगा। और उस एक विद्यार्थीके लिए — मैं काश्मीरमें रहूँगा तो वहाँसे भी — पदवी देनेके लिए मैं यहाँ आऊँगा। तुम ऐसा कभी न मानना कि उस समय मेरा उत्साह आजसे ज़रा भी कम होगा। मैं तो कह सकता हूँ कि उस एक ही विद्यार्थीको पदवी देनेमें मुझे अधिक उत्साह रहेगा। और उसमें मैं अधिक गर्व लूँगा, अगर मैं उस गर्वके योग्य हुआ तो।

श्री कुलनायकने मुझसे विद्यापीठको स्वतंत्र शिक्षणकी राह पर ले चलनेकी प्रार्थना की है। उन्होंने इस सम्बन्धमें जो आदर्श सामने रखे हैं, उनका मैं स्वागत करता हूँ। दूसरी बात मुझसे यह पूछी गई है कि क्या हम विद्यापीठमें इनामोंका लालच रखेंगे? हमें विद्यार्थियोंसे कहना चाहिये कि विद्या ही उनका इनाम है। यज्ञका फल यज्ञ ही है। उसका भी मैं स्वागत करता हूँ। लेकिन मैं तो अपनी मर्यादाओंको समझ कर चलनेवाला आदमी हूँ। हमें ऐसी तेज़ हवाके विरुद्ध काम करना है कि शिक्षणमें फेरबदल करनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती।

* * *

विद्यापीठकी स्थापना करके मैंने मूर्खता नहीं की है। तुम भी मेरे जैसा विश्वास रख सको तो रखना। मैं हमारी ख़ामियोंको जानता हूँ, क्योंकि मैं ख़ामियोंसे भरा हुआ हूँ। पर तुम अपने भीतर कमज़ोरियाँ मत आने देना।

८

छठा पदवीदान-समारंभ

[ता० १५-१-१९२८]

इस बार पदवीदानका भाषण देनेके लिए दीनबन्धु एन्ड्रूज़को बुलाया गया था। उनका भाषण अंग्रेज़ीमें हुआ था। जो लोग अंग्रेज़ी समझ सके वे तो श्री एन्ड्रूज़की वाणीकी मिठास और सहृदयतासे मुग्ध हो गये। लेकिन अंग्रेज़ी न जाननेवाले लोगोंके सामने गांधीजीने उस भाषणका सार निकाल कर अपने भाषणमें इस तरह रखा :

दीनबन्धु एन्ड्रूज़ केवल एक भले अंग्रेज़ ही नहीं हैं, उन्होंने इस देशके लिए अपना सब-कुछ छोड़ दिया है। इतना ही नहीं, वे एक कलाकार हैं, कवि हैं, छटादार भाषण करनेवाले हैं। जिन लोगोंने उनके भाषणों और उनके कार्योंका अध्ययन किया है, वे समझ सकते हैं कि उनकी सारी रचनाओंमें कला भरी रहती है। वे कवि हैं, क्योंकि वे यह समझते हैं कि भविष्य कैसा होना चाहिये और कैसा होगा। वे छटादार भाषण करनेवाले हैं इसका कारण यह नहीं है कि वे ऊँची आवाज़में बोल सकते हैं और उनके उच्चारण और भाषा उत्तम प्रकारके हैं; वस्तुतः उनकी सारी छटा उनके हृदयसे उमड़ती है। उनका भाषण अगर तुम पढ़ोगे तो तुम पर एक असर होगा; और उसे ध्यानसे सुननेवालों पर उसका दूसरा ही असर हुआ होगा। आम तौर पर हम ऐसा मानते हैं कि जो आदमी घंटों तक सतत बोलता रहता है वह छटादार भाषण करनेवाला है। किसीके मनमें ऐसा विचार आ सकता है कि एन्ड्रूज़को भाषण देते नहीं आता इसलिए वे लिख कर अपना भाषण पढ़ गये। लेकिन ऐसा मानना

मूर्खता होगी। उन्होंने अपने लिखे हुए भाषणमें इतना रस भर दिया है कि उसमें हमें डुबो दिया है। यह रस उनके हृदयसे निकला है।

उन्होंने अपने भाषणमें मरहूम हकीम साहबका ज़िक्र किया है। ऊपर ऊपरसे देखने पर किसीको ऐसा लग सकता है कि हकीम साहबकी मृत्युके साथ स्नातकोंके पदवीदानका क्या सम्बन्ध है? यह तो कलाहीनताकी निशानी कही जायगी। लेकिन मुझे लगता है कि इसीमें एन्ड्रूज़ने अपनी कला दिखा दी है और अपना मतलब साध लिया है। वे तुम्हारे मुक़ाबले बूढ़े कहे जायेंगे। उन्होंने अपने बचपनकी बात कही है। यह बात भी कही है कि उन्होंने हकीम साहबसे अपनी शिक्षाकी शुरुआत की थी। हकीम साहब जब बड़े मशहूर हकीम हो गये थे और अपने हकीमीके ज्ञानसे ग़रीब-अमीरकी सेवा करते थे, तब एन्ड्रूज़ने देखा कि वे हकीम साहबसे तालीम ले रहे हैं। अपने अनुभवमें ही बात करके उन्होंने कहा कि मुझे अपने अध्यापकोंके भाषण आज याद नहीं हैं; लेकिन मेरा बड़ेसे बड़ा, पवित्रसे पवित्र स्मरण तो यह है कि मेरे एक अध्यापक मेरे हृदय पर अपना प्रभाव डाल सके। और शिक्षणका यही सार बतानेके लिए उन्होंने हकीम साहबकी कथा हमें कही। उसमें अनोखी कला भरी है; करुणा तो उसमें है ही। अपना भाषण पढ़ते पढ़ते उन्होंने हमें वीररसका स्वाद चखाया है; और अंतमें त्यागका, क़ुरबानीका उपदेश दिया है।

इसके सिवा, उन्होंने हमें अपना इतिहास बताया है। आज हमारे हृदय निराशाकी खाईमें जा पड़े हैं; और हमें इस बातका डर है कि मकान तो हमारे पास हैं, लेकिन दो बरसके बाद इनमें कहीं कबूतर तो नहीं उड़ने लगेंगे! हमारी इस निराशाकी बातको एन्ड्रूज़ जानते हैं। मैंने उनसे इस बारेमें कोई बात नहीं की, लेकिन वे तो आसपास-की हवासे ही सब कुछ देख लेते हैं। इसलिए उन्होंने तुमसे कहा कि तुम्हारे पास तो मकान हैं, पैसे हैं, ज़मीन है और गुजरात जैसे प्रांत-से तुम्हें पैसे भी मिलते रहेंगे; लेकिन मैं जिस कॉलेजमें पढ़ा हूँ उसके

जन्मकी बात तुम्हें सुनाऊँ तो तुम्हें अचरज होगा और तुम्हें आशाकी किरणें दिखाई देंगी। इसका कारण यह है कि उस कॉलेजका जन्म एक छोटेसे झोंपड़ेमें हुआ था। और वह भी एक बहादुर विधवाके हाथों — जो शादीके दिन ही विधवा हो गई थी। वह चाहती तो दुबारा शादी कर सकती थी, लेकिन उसने तो सेवाधर्मको पसंद किया। उसने संन्यासियों और साधुओंको ढूँढ़ा और उनसे विद्यार्थियोंको शिक्षा देनेकी बात कही। उनके रहनेके लिए उसने झोंपड़े बनवा दिये। उन झोंपड़ोंसे ही आजका विशाल पेम्ब्रोक कॉलेज खड़ा हुआ है, जिसमें से स्पेन्सर और ग्रे जैसे कवि पैदा हुए, पिट जैसे राजनीतिके नेता पैदा हुए और ब्राउन जैसे पंडित उत्पन्न हुए। यह बात कह कर उन्होंने तुम्हें आश्वासन दिया है कि जैसी मेरे कॉलेजकी कहानी है वैसी ही तुम्हारी भी कहानी है। अपने विद्यापीठमें भी अगर तुम धीरजसे काम करते रहोगे, तो उसमें से वीर पैदा होंगे। और इसके लिए उन्होंने उपाय बताया है — आत्मश्रद्धा। ईश्वरके प्रति मनुष्यके विश्वास और धीरजसे इस आत्मश्रद्धाका जन्म होता है। कोई उत्तम वस्तु एकदमसे पैदा नहीं होती। बड़े मज़बूत पेड़का बीज कितने ही समय तक ज़मीनमें दबा रहता है। लेकिन माली जानता है कि समय आने पर इसमें से बड़ा पेड़ होगा, कुछ समय तक ज़मीन पर घास उगे तो उसे भी उगने देना पड़ेगा; माली निराश नहीं होता, क्योंकि वह ज्ञानी है। हमसे एन्ड्रूज़ ऐसे ज्ञानकी आशा नहीं रखते, लेकिन श्रद्धाकी आशा वे रखते हैं। श्रद्धाकी 'बाइबल' की व्याख्या उन्होंने हमारे सामने रखी है — जिस चीज़को हम देख न सकें उसका सबूत श्रद्धा है। यह श्रद्धा अगर तुममें होगी तो विद्यापीठ कभी बंद नहीं होगा। पेम्ब्रोक कॉलेजके बढ़नेमें जितने बरस लगे उतने विद्यापीठके बढ़नेमें नहीं लगे। तुम कहोगे कि विद्यापीठकी तरक़्क़ी यही हुई न कि उसके १५ कुमार-मंदिर बंद हो गये? और भी बंद होंगे। लेकिन तुम्हारी श्रद्धा होगी तो तुम निराश नहीं होगे। कुमार-मंदिर बंद हो गये,

क्योंकि हम सख्त बने रहे, हमने अपनी शर्तें क़ायम रख कर कहा : 'कातना हो तो यहाँ रहो, नहीं तो चले जाओ।' एक दिन ऐसा आ सकता है कि जब यहाँ कोई भी न रह जाय; अकेला कुलपति ही हो — शिक्षक भी वही हो और शिष्य भी वही हो। उसके सामने उसका चरखा पड़ा हो तो कोई तो देखने आयेगा। कोई आदमी न आया तो बंदर तो आयेंगे, और अगर उसमें श्रद्धा होगी तो उनके साथ वह दमयंतीकी तरह बातें करेगा और आश्वासन पायेगा। मेरी श्रद्धाका सबूत क्या है? सबूत यही कि मुझमें श्रद्धा है। तुमसे कोई पूछे तो कहना कि वह जो चरखा चरखा बका करता है उसके पास जाओ। इतनी श्रद्धा अगर तुममें हो तो एन्ड्रूज़ कहते हैं कि तुम एक नहीं लेकिन एक हजार पेम्ब्रोक पैदा करोगे। कहाँ इंग्लैंड और कहाँ हिन्दुस्तान — जिसमें कितने ही इंग्लैंड समा जायें! लेकिन हममें इतनी वीरता है? इतना धीरज है? वीरता और धीरजके बिना श्रद्धा पैदा नहीं होती। हम अपने सिद्धान्तों पर डटे रहें और विश्वास रखें। ग्राहक देखकर पुड़िया बाँधे और चीज़ोंके दाम बदलता रहे, ऐसे दगाबाज़ व्यापारीका व्यापार हमें नहीं करना है। इतना करेंगे तो विद्यार्थी आयेंगे, इसलिए हम नियमोंको इतना ढीला कर दें — इस तरहके व्यापारसे न तो जनताको कुछ लाभ होगा और न विद्यापीठको कुछ लाभ होगा। अध्यापकोंमें श्रद्धा होगी तो वे एक ही आवाज़ निकालेंगे। विद्यार्थी भी एक ही आवाज़ निकालेगा। वह कहेगा कि मैं अकेला हुआ तो भी क्या? अध्यापक मुझ पर अपना सब-कुछ ऊँड़ेल देंगे। ईश्वर भी एक ही है, लेकिन उसके कार्य अनेक हैं। इसी तरह जो विद्यार्थी एक होते हुए भी निडर होकर रहेगा, उसमें से १०० विद्यार्थी पैदा होंगे। यही एन्ड्रूज़के भाषणका सार, उनकी वीणाका स्वर है।

मेरा भी यही भाषण है, ऐसा तुम मानना। तुम अपने मनमें महाविद्यालयके लिए अभिमान रखना, विद्यापीठको सँभालना, अपने जीवनको उज्ज्वल बनाना। जहाँ तुम रहो-बसो वहाँ विद्यापीठका स्मरण

ना। विद्यापीठ भविष्यमें क्या शकल पकड़ेगा यह तो तुम थोड़े
में जानोगे, लेकिन धीरज रखना। इतना मैं ज़रूर तुमसे कह देना
ता हूँ कि जब तक हममें से थोड़े लोग भी ज़िन्दा रहेंगे तब
विद्यापीठका नाश नहीं होने देंगे। इस विद्यापीठकी हस्तीके लिए
नष्ट हो जाना पड़े, फ़ना हो जाना पड़े, तो वैसा करनेके लिए
तैयार हूँ। तुम विद्यापीठका तेज बरदाश्त कर सको, तो मानना
तुम्हारे लिए यहाँ सदा ही आसरेका स्थान है। अगर विद्यापीठका
तुमसे बरदाश्त न हो, तो मुझे दोष न देना, अध्यापकोंको दोष न
, परन्तु अपने विधाताको दोष देना। लेकिन अगर हम अपना
न पालनेमें असफल रहें, तो हम सबके अहिंसक होते हुए भी मैं
कहता हूँ कि हमें मार डालनेका तुम्हें अधिकार है।

९

विद्यार्थियोंसे

[१९२८ में गूजरात विद्यापीठकी पुनर्रचना हुई, उसके बाद
ात महाविद्यालयका सत्र शुरू होनेके समय ता० ११-६-१९२८ को
जीने विद्यार्थियोंके सामने नीचे दिया हुआ भाषण किया।]

इस समय तुम्हारे मन शायद डाँवाडोल होंगे। तुम त्रिशंकु जैसी
तसे बाहर निकल जाओ इस कारण तुमने मुझे यहाँ रहनेका
त्रण दिया हो, या दूसरा कोई कारण इसके पीछे रहा हो, लेकिन
शांत करनेके इरादेसे मैंने तुम्हारा आमंत्रण स्वीकार कर लिया।
न यह आमंत्रण मुझे देनेवालोंमें से सभी विद्यार्थी या तुममें से
क डरपोक निकले। मुझे तुमने बुलाया और फिर यहाँसे निकाल
दिया। वापिस बुलाते समय जो शर्तें तुमने रखीं वे ऐसी थीं, जिन्हें
जैसा स्वाभिमानी आदमी क़बूल नहीं कर सकता। ऐसा करके

हमें नज़दीक आनेका जो सुअवसर मिला था उसे तुमने खो दिया। लेकिन हम एक-दूसरेसे दूर नहीं हैं। विद्यापीठके आदर्शोंके कारण तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध हो गया है। मेरा इरादा इन आदर्शोंको तुम्हारे हृदयमें उतार देनेका था, जो इस समय पूरा नहीं हुआ।

इन छुट्टियोंमें तुमने इन ध्येयोंको पढ़ा हो, तुमने इन पर गहरा विचार भी किया हो, तो कितनी ही बातें तुम्हारी समझमें आ गई होंगी। अपनी छुट्टियोंका तुमने ऐसा उपयोग न किया हो, तो जैसे तुम उस समय थे ठीक वैसे ही अब यहाँ आये होंगे। मैंने तो महाविद्यालयमें कई बार कहा है कि तुम्हें संख्याबलके पीछे पड़नेकी ज़रा भी ज़रूरत नहीं। मैं यह नहीं कहना चाहता कि संख्याबल हमें प्रिय नहीं है। लेकिन वह न हो तो हम निराश न बनें; सब कुछ चला गया, हाथसे बाजी चली गई यह न मानें। संख्यामें हम कम हों या ज़्यादा, हमारा सच्चा बल तो सिद्धान्तोंको स्वीकार करनेमें और मनुष्यकी शक्तिके अनुसार उनका पालन करनेमें ही है। ऐसे विद्यार्थी बहुत ही कम संख्यामें हों तो भी जो काम हमें विद्यापीठके ज़रिये सिद्ध करना है वह यानी मुक्ति — अंतिम मुक्ति नहीं, परन्तु स्वराज्यरूपी मुक्ति — ज़रूर सिद्ध की जा सकती है। जिस स्वराज्यके लिए विद्यापीठकी स्थापना हुई है, वह स्वराज्य ज़रूर मिल सकता है। हम अगर अप्रामाणिक होंगे, तो स्वराज्य नहीं मिलेगा। अभी अभी विद्यापीठमें जो परिवर्तन हुए हैं और अब आगे जो परिवर्तन होंगे, वे तो डरते डरते इस ख़यालसे करने पड़े या करने पड़ेंगे कि कहीं तुम पर बहुत बोझ न पड़ जाय। यह कैसी दयावनी हालत है! इसमें न तो तुम्हारी शोभा है, न हमारी शोभा। होना तो यह चाहिये कि इन सिद्धान्तोंके पालनमें तुम ज़रा भी कमी नहीं आने दोगे, ज़रा भी नहीं चूकोगे — ऐसा अभय-दान तुम्हारी ओरसे अध्यापकों और संचालकोंको मिल जाय। यह अभय-दान नहीं है; इसकी तो मैं तुमसे भीख माँगने आया हूँ। सत्रके आरंभसे ही तुम अध्यापकोंको इस बारेमें निश्चिन्त कर दो,

तो विद्यापीठका काम चमक उठेगा। तुम्हारे काममें असत्यका ज़रासा भी स्पर्श नहीं होना चाहिये। तुम अपने मनको, अध्यापकोंको, बुज़ुर्गोंको और भारतवर्षको धोखा न दो, तो ही तुम विद्यापीठकी शोभा बढ़ाओगे। तुम अपने अध्यापकोंसे हर बातकी स्पष्टता माँग सकते हो। उनका कर्तव्य है कि वे तुम्हारी उलझनोंको सुलझायें। ऐसा न करके अगर तुम जैसे-तैसे यहाँ बैठे रहोगे, तो विद्यापीठका तंत्र बेसुरा चलेगा। विद्यापीठका काम ऐसे अच्छे ढंगसे चलना चाहिये कि वह संगीत जैसा लगे। तंबूरेके संगीतके पीछे जो संगीत रहता है वह स्थूल — बाहरी — संगीत है। जो सुन्दर जीवन संगीतमय है, वही मानो सच्चा संगीत है। माँ-बापने अपने बालकको सही रास्ते पर डाला हो, तो बालक भी इस जीवन-संगीतको जानता है। बालकके पास सिर्फ़ रोनेकी ही बोली है; लेकिन वह भी अगर सुरमें निकले तो शोभा देती है। बालकमें जैसा माधुर्य होता है वैसा ही विद्यार्थियोंमें होना चाहिये। अगर तुम सत्यका आचरण करनेवाले बनो, तो यह स्थिति पैदा करना आसान है। विद्यार्थी अगर सत्यका आचरण करनेवाले हों, तो उनके ज़रिये हिन्दुस्तानका स्वराज्य हासिल किया जा सकता है। सत्य और अहिंसाके मार्ग पर चल कर ही हमें स्वराज्य लेना है; यह बात विद्यापीठके सिद्धान्तोंमें ही समाई हुई है। इसलिए इसे साबित करनेकी ज़रूरत नहीं रहती। अथवा किसीके मनमें ऐसी शंका हो तो जल्दीसे जल्दी उसे दूर करा लेना चाहिये।

सरकारी शालाओं और हमारी शालाओंके बीच जो भेद है, वह समझने जैसा है। हमारे कुछ विद्यार्थी जेलमें गये हैं; और दूसरे जायेंगे। यह विद्यापीठके लिए शोभाकी बात है। सरकारी शालाओंके विद्यार्थियोंमें ऐसी ताक़त और हिम्मत है कि वे वल्लभभाईकी मदद कर सकें? अथवा मदद करनेके बाद शिक्षकोंको धोखा दिये बिना वे शाला या कॉलेजमें रह सकते हैं? ऐसी स्थितिमें उन्हें कितना भी ज्ञान मिले तो वह किस कामका? उनका बल — उनका तेज नष्ट कर देनेके

बाद उन्हें दिया हुआ ज्ञान किस कामका? खोटे रुपयेकी क्या क़ीमत? उसका उपयोग करके दूसरोंको धोखा देनेवाला आदमी तो सज़ाके क़ाबिल होता है। आज सरकारी शालाके विद्यार्थियोंकी हालत इस खोटे रुपये जैसी है। हमारी शालामें विद्यार्थियोंका तेज टिका हुआ तो है ही; इतना ही नहीं उसमें वृद्धि भी होगी।

एक दूसरा भेद भी ध्यानमें रखने जैसा है। मैं कई बार यह बता चुका हूँ कि सरकारी कॉलेजकी शिक्षाके साथ हमारी शिक्षाकी तुलना नहीं हो सकती। इस झंझटमें तुम पड़ोगे तो नुक़सान उठाओगे। उसकी बराबरी हम नहीं कर सकेंगे। अंग्रेज़ी वहाँ जिस तरह सिखाई जाती है उस तरहसे हमें नहीं सिखानी है। लेकिन अंग्रेज़ी साहित्यका जो सूक्ष्म ज्ञान है वह हमें गुजराती भाषाके द्वारा विद्यार्थियोंको देना है। गुजराती भाषाका विस्तार हो, यह शोभाकी बात है। हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे गुजरातीमें गहरेसे गहरे विचार प्रगट किये जा सकें। गुजराती बोलते हुए बीचमें अंग्रेजी शब्दों या वाक्योंका उपयोग करना पड़े, यह बहुत बुरी, बड़ी शरमकी बात है। दुनियाके दूसरे किसी भी देशकी ऐसी हालत नहीं है। अंग्रेज़ी साहित्यका जितना ज्ञान ज़रूरी होगा उतना आगे चल कर हम विद्यार्थियोंको देंगे। इस समय तो जो ज्ञान हम लेंगे वह गुजरातीके ज़रिये ही लेंगे। विज्ञान भी अपनी भाषाके ज़रिये ही हम सीखेंगे। पारिभाषिक शब्द नये न बना सकें तो अंग्रेज़ी शब्द ही ले लेंगे, लेकिन उनकी व्याख्या तो गुजरातीमें ही देंगे। इससे हमारी भाषा शक्तिशाली बनेगी; जिन अलंकारोंका हमें उपयोग करना होगा, वे हमारी ज़बान पर चढ़ेंगे और क़लमसे लिखाईमें आयेंगे। आजकी इस बेहूदी हालतसे हम जितनी जल्दी बाहर निकल सकें उतनी जल्दी हमें निकल जाना चाहिये। इस बारेमें मैंने 'नवजीवन' में जो कुछ लिखा है उसे तुम वेदवाक्य मानना। अंग्रेज़ीके ज़रिये ज्ञान देनेकी वजहसे हमारी जनताको

कितना कष्ट उठाना पड़ता है! इस बातका उदाहरण यह है कि हम अपने धर्मको भूल गये हैं, अपने कर्मको भूल गये हैं।

दूसरा उदाहरण अर्थशास्त्रका है। वहाँ जो अर्थशास्त्र सिखाया जाता है वह ग़लत है। तुम जिज्ञासु होगे तो देखोगे कि जर्मन, अमेरिकन या फ्रेंच भाषामें जो अर्थशास्त्र सिखाया जाता है वह अलग अलग ढंग या प्रकारका होता है। मेरे पास हंगरीका एक आदमी आया था। वह जो बात कहता था उससे मुझे लगा कि वहाँका अर्थशास्त्र अलग ही प्रकारका होना चाहिये। हर देशकी स्थितिको देख कर वहाँका अर्थशास्त्र रचा जाता है। यह मानना अनुचित है कि किसी एक देशका अर्थशास्त्र सारी दुनियाके लिए ठीक है। आज हमारे यहाँ सिखाया जानेवाला अर्थशास्त्र तो हिन्दुस्तानको तबाह कर रहा है। हमें हिन्दुस्तानके अर्थशास्त्रका पता ही नहीं है; हमें अभी उसकी खोज करनी है।

यही बात इतिहासको लागू होती है। शिक्षकोंको सोचना चाहिये कि हिन्दुस्तानका इतिहास क्या हो सकता है। कोई फ्रेंच हिन्दुस्तानका इतिहास लिखे तो वह अलग ढंगसे लिखेगा, अंग्रेज़ लिखे तो वह अपने ढंगसे लिखेगा। और हिन्दुस्तानका आदमी मूल लेखोंकी खोज करके, हिन्दुस्तानके वातावरणको देख कर इतिहास लिखे, तो अवश्य ही वह अलग ढंगसे लिखेगा। फ्रेंचों और अंग्रेजोंकी लड़ाइयोंके अंग्रेज़ों द्वारा किये गये वर्णनोंको क्या तुम वेदवाक्य मानते हो? जिसने वे वर्णन लिखे होंगे उसने सच्चे लिखे होंगे, तो भी अपनी ही दृष्टिसे लिखे होंगे। वह अपने इतिहासमें ऐसे ही प्रसंगोंका वर्णन करेगा, जिनमें जीत अंग्रेज़ोंकी हुई हो। हम भी ऐसा ही करेंगे। फ्रेंच लोग भी ऐसा ही करेंगे। हम तो हिन्दुस्तानका कोई अलग ही इतिहास लिखेंगे। महाभारतका अर्थ भी कोई अंग्रेज़ विद्वान एक तरहसे करेगा, भारतीय विद्वान दूसरी तरहसे करेगा; और अगर वह हृदयमें उतार कर उसका अर्थ करेगा, तो इससे भी अलग ढंगसे करेगा। विन्सेंट स्मिथकी शैली

सुन्दर है और उनमें विद्वत्ता है, इसलिए उनका लिखा इतिहास अच्छा लगेगा। लेकिन वह ठीक नहीं है। अंग्रेज़ विद्वान ही कहते हैं कि उसमें बहुतसी बातें ग़लत हैं, बहुतसी बातें रह भी गयी हैं। विलियम विलसन हंटरको भी यही बात लागू होती है। यहाँ विद्यापीठमें पुस्तकोंसे इतिहास नहीं सिखाया जायगा। यहाँके शिक्षकने हिन्दुस्तानका खूब अभ्यास किया होगा, गहरा निरीक्षण किया होगा। वह अगर हिन्दुस्तानका भक्त होगा, तो इतिहास एक तरहसे सिखायेगा; और अगर उसने अंग्रेज़ी इतिहासोंसे अपना दिमाग़ भर रखा होगा, तो तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा — उसे तो कोई लाभ हुआ ही नहीं है।

हमारे विद्यालयमें हर विषय सरकारी कॉलेजसे उलटी ही पद्धतिसे सिखाया जायगा। गणितशास्त्रके सवाल भी हमारा शिक्षक दूसरे ही ढंगसे करेगा। ग्रेग जिन हिन्दुस्तानी बालकोंको सिखाते हैं उनके लिए वे नया गणितशास्त्र बना रहे हैं। हमारा शिक्षक मांचेस्टरसे लीवरपूलका फ़ासला विद्यार्थियोंको नहीं सिखायेगा। वह हिन्दुस्तानके ही वातावरणके आधार पर सवाल बनायेगा, जिससे गणितशास्त्रके द्वारा हमारा इतिहास और भूगोल भी सिखाया जा सके। हमें गणितशास्त्र, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र सभी कुछ नया रचना है। इसमें तुम विद्यार्थी अगर मदद न करो, तो अध्यापक क्या करें? और, यह तो स्पष्ट है कि अध्यापक ही अगर अश्रद्धालु होंगे तो विद्यापीठके सिद्धान्त ख़तम हो जायेंगे।

तुम अपना विश्वास, धीरज और उद्यम मत खोना। अध्यापकों पर और सिद्धान्तों पर अगर तुम्हारा विश्वास होगा, तो तुम नहीं डरोगे। विद्यार्थियोंकी तादाद कम होगी तो भी नहीं डरोगे और विद्यापीठका नाम रोशन करोगे। अध्यापकोंको सब बातें अच्छी तरह सिखानेके लिए तुम मजबूर कर दोगे। तुम अगर अभ्यासी विद्यार्थी होगे, तो मैंने जो बातें बताई हैं उनमें से भी अध्यापकोंको प्रश्न पूछ पूछ कर परेशान कर डालोगे। अगर तुम पूरी दिलचस्पी ले

कर यहाँ काम करोगे, तो रसके घूंट पीनेको तुम्हें केवल विद्यापीठमें ही मिलेंगे; यहाँ तुम्हारे शरीर तेजस्वी बनेंगे, मन तेजस्वी बनेंगे और आत्मा भी तेजस्वी बनेगी।

यहाँ तुम आत्माको तेजस्वी बनानेके लिए आते हो। इसलिए यहाँ उद्योगका जो शिक्षण रखा गया है उसमें तुम दिलचस्पी लोगे, तो उद्योगकी बुद्धि न होने पर भी वह तुममें पैदा होगी। लेकिन अगर तुम जड़ बन कर रंदा फेरोगे, तो यह नहीं हो सकेगा। इसमें दिलचस्पी लोगे तो तुम समझ जाओगे कि इसका भी एक शास्त्र है। अगर सजग होकर उद्योग करोगे तो देखोगे कि इसमें बड़ा आनंद है। इसका भी एक शास्त्र है, यह तुम सिद्ध कर सकोगे। तुम मनमें यह निश्चय करना कि मुझे जुलाहा बनना है, बढ़ई बनना है, और हिन्दुस्तानको स्वराज्य दिलाना है; मुझे नौकरी नहीं करनी है, क्लर्क नहीं बनना है। तुम मनमें यह निश्चय रखना कि हम मेहनत-मशक्कत करके, खादी बुनकर, खादीसेवक बनकर अपना गुज़ारा करेंगे।

१०
सातवाँ पदवीदान-समारंभ

[ता० १५–१–१९२९]

[सातवें पदवीदान-समारंभके समय काँगड़ी गुरुकुलके आचार्य श्री रामदेवजीको भाषण देनेके लिए बुलाया गया था। उनके भाषण-का सार समझाते हुए गांधीजीने ता० २०–१–१९२९ के 'नवजीवन' में लिखा था कि "उनका उद्देश्य यह बताना था कि सरकारी शिक्षाकी रचना जान-बूझ कर हमारी सभ्यताका नाश करनेके लिए और हमारी गुलामीको क़ायम रखनेके लिए की गई है। अपनी यह बात उन्होंने अंग्रेज़ लेखकोंकी पुस्तकोंसे साबित की थी।" आचार्य रामदेवजीके दो घंटेके भाषणके बाद अंतमें गांधीजीने नीचेके वचन कहे थे।]

शुरूमें आचार्य रामदेवजीका परिचय कराते हुए उन्होंने कहा :

आचार्य रामदेव इतिहासके विद्वान हैं। इन्होंने स्वामी श्रद्धानंदजीके साथ काँगड़ी गुरुकुलकी सेवा आरंभ की थी। ये श्रद्धानंदजीके साथी और पट्टशिष्य हैं और गुरुकुलकी श्रद्धानंदजीकी गद्दीको ये ही सँभालते हैं। राष्ट्रके लिए और राष्ट्रभाषाके लिए इनकी लगन और उत्साह अनोखा है। इन्होंने अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं और उन पर सोचा-विचारा है। उनमें से इन्होंने हमारे सामने कुछ ही बातें रखी हैं।

इसके बाद स्नातकोंसे गांधीजीने कहा :

यह पदवी लेनेसे अगर तुम्हें अपना और अपने राष्ट्रका गौरव बढ़ता मालूम न होता हो, तो तुम यह पदवी मत लेना। और यहाँसे एक मील दूर जो सरकारी कॉलेज है उसकी पदवीकी तुम्हारे मनमें क़ीमत हो, तो तुम वही पदवी लेना। मैंने तो तुम्हें यह पदवी दे दी और अपने आशीर्वाद भी दे दिये। उसके बाद भी अगर मिली हुई पदवी वापिस देना चाहो तो तुम दे सकते हो। जो विद्यार्थी स्नान करके शुद्ध हो गये हैं, वे स्नातक कहे जायेंगे। लेकिन परखका समय तो अब शुरू होता है। इस परीक्षासे तो तुम्हें केवल जीवनकी बड़ी परीक्षामें प्रवेश करनेका हक़ मिला है। तुम्हें अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान-भंडारको बढ़ाकर देशकी सेवा करनी है।

विद्यापीठका मंत्र ही यह है कि जो मुक्ति दिलाये वही विद्या है। इस मंत्रको तुम सदा ध्यानमें रखना। विद्यापीठके दुःखमें दुःखी और उसके सुखमें सुखी होना। पशु, पक्षी सभी खाना खाते हैं। खाना तो ईश्वरने सबको दिया है। लेकिन मनुष्यका जन्म ईश्वरको पहचाननेके लिए है। मुझे और तुम्हें मुक्त होना है। और दूसरोंको मुक्त करानेका प्रयत्न करना तुम्हारा फ़र्ज़ है। इस फ़र्ज़को तुम समझो और उसमें हमेशा जुटे रहो। तुम ईश्वरको पहचानो और मनुष्यके गौरवकी रक्षा करके जीवन बिताओ। ईश्वर तुम्हें अपने फ़र्ज़में हमेशा लगे रहनेकी शक्ति दे!

११

आठवाँ पदवीदान-समारंभ

[ता० ११-१-१९३०]

छोटेसे छोटा रास्ता

नय स्नातकोंको शुद्ध बनने और शुद्ध रहनेका आशीर्वाद देकर गांधीजीने गुजरातियोंसे विद्यापीठको निभानेकी विनती की। "विद्यापीठको सालाना सिर्फ़ ६०००० रुपये चाहिये। इतने रुपये तो अहमदाबादके शहरी ही दे सकते हैं" — ऐसा कहकर श्री वल्लभभाईने और काकासाहबने सहायताकी जो माँग की, उसे पूरा करनेकी विनती गांधीजीने लोगोंसे की। इसके बाद उन्होंने लाहौरका 'पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव और ख़ास तौर पर विद्यापीठके विद्यार्थियों, स्नातकों और संचालकोंके लिए उसमें रहा अर्थ इस तरह समझाया:

लाहौरमें पूर्ण स्वराज्यका प्रस्ताव पास करानेमें मैंने हिस्सा लिया और उस प्रस्तावमें सविनय क़ानून-भंगकी शर्त भी रखवाई। तुम अगर मुझसे पूछो कि इसका हम क्या अर्थ करें, तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। यहाँ मैंने कई बार कहा है कि विद्यापीठमें हमें संख्याकी नहीं लेकिन शक्तिकी ज़रूरत है। अगर थोड़ेसे लोग भी उन्हें सौंपा गया काम पूरा कर दें, तो उनकी शक्तिसे हमारा सोचा हुआ काम सिद्ध हो सकता है। इसी तरहके विश्वास पर मैंने सविनय क़ानून-भंगका और पूर्ण स्वराज्यका प्रस्ताव पेश करनेकी हिम्मत की।

कलकत्तेके प्रस्तावमें 'डोमिनियन स्टेटस' हासिल करनेकी प्रतिज्ञा थी। अगर हमारी वह प्रतिज्ञा सच्ची थी, तो १९२९ के अंतमें 'डोमिनियन स्टेटस' की माँग पूरी न होनेकी हालतमें बड़ेसे बड़े दुःख और निन्दा सहकर भी लाहौरका पूर्ण स्वराज्यका प्रस्ताव पास करना

हमारा धर्म हो गया था। आज जब 'डोमिनियन स्टेटस' को 'स्वतंत्रता' के मुक़ाबलेमें रखा जाता है तब मेरे जैसा 'डोमिनियन स्टेटस' का हिमायती भी 'स्वतंत्रता' की ही बात करता है। अर्ल रसलके एक वाक्यने हमें सावधान कर दिया है। उन्होंने जब कहा कि 'डोमिनियन स्टेटस' का अर्थ एक तरहकी 'स्वतंत्रता' ही है और उस तरहकी स्वतंत्रता पानेमें हिन्दुस्तानको बहुत देर लगेगी, तो हमें इशारेमें समझ जाना चाहिये कि लॉर्ड अर्विन और वेजवूड बेन जिस 'डोमिनियन स्टेटस' की बात करते हैं वह बाहरके उपनिवेशोंके 'डोमिनियन स्टेटस' से बिलकुल अलग है। केनेडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंडमें जो 'डोमिनियन स्टेटस' है उसे तो बिलकुल स्वतंत्रताका ही सम्बन्ध कहा जायगा। जब तक ब्रिटिश सल्तनतके साथ रहनेमें वे लोग लाभ समझेंगे तब तक उसके साथ रहेंगे और जब लाभ नहीं देखेंगे तब उस सम्बन्धको तोड़ देंगे। मैंने जब जब 'डोमिनियन स्टेटस' की बात कही है, तब तब उसका यही अर्थ किया है। इससे कमके 'डोमिनियन स्टेटस' की मेरे मनमें कल्पना ही नहीं थी। लेकिन आज जब हमें मिलनेवाले 'डोमिनियन स्टेटस' का अर्थ इंग्लैंडके ही मंत्रियोंके कहे मुताबिक़ बहुत संकुचित है, तब तो उसका मतलब यह हुआ कि आज तक हम लोहेकी बेड़ियाँ पहने हुए थे, अब सोनेकी या हीरेकी बेड़ियाँ पहनेंगे। ऐसे 'डोमिनियन स्टेटस' की हमारे लिए क्या क़ीमत हो सकती है? लेकिन बदक़िस्मती तो यह है कि पूर्ण स्वराज्यकी बात ही हमें डराती है और मूर्खताकी लगती है; और हममें से कुछ लोग डरकर कह रहे हैं कि ब्रिटेनके साथ हमारा सम्बन्ध टूटेगा तो हिन्दुस्तानमें मार-काट मच जायेगी, अराजकता हो जायगी। ठीक है, तो अहिंसाका पूरा पूरा उपासक होते हुए भी, अहिंसामें हमेशा पूरा विश्वास होने पर भी मुझे फिर एक बार साफ़ शब्दोंमें कहना होगा कि अगर अराजकता और मार-काटका साक्षी बनने और गुलामीका साक्षी बननेके बीच मुझे चुनाव करना हो, तो मैं कहूँगा कि अराजकता और मार-काटका साक्षी मैं

बनूँगा, हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके गले काटकर खूनकी नदी बहायें तो उसका भी साक्षी मैं बनूँगा, लेकिन सोनेकी बेड़ियोंवाली गुलामीका साक्षी बनना मैं पसंद नहीं करूँगा। सोनेकी बेड़ियाँ पहननेसे स्वतंत्रता कभी नहीं मिलेगी। लोहेकी बेड़ियाँ तो हमेशा चुभती रहती हैं, इसलिए उन्हें निकाल फेंकनेका मन होता है, लेकिन सोनेकी या हीरेकी बेड़ियाँ चुभती नहीं और इसलिए हम उन्हें कभी निकालकर फेंक ही नहीं सकेंगे। इसलिए अगर हम बेड़ियाँ पहननेके लिए ही पैदा किये गये हों तो मैं ईश्वरसे कहूँगा कि हे भगवान, हमारी बेड़ियाँ तू लोहेकी ही रखना, ताकि मैं हमेशा यह प्रार्थना करता रहूँ कि किसी दिन तो वे बेड़ियाँ हमारे पैरोंमें से निकलें।

इसलिए हमने 'पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव पास किया वह अच्छा ही हुआ है। मैं यह मान लेता हूँ कि यहाँ जो लोग आये हैं वे सब पूर्ण स्वराज्यवादी हैं। दूसरे लोग भले ही अफ़गानिस्तानके हमलेकी बात करके डरें और घबरायें। मैं तो कहता हूँ कि अफ़गानिस्तानको हमला करना हो तो कलके बदले वह आज ही करे; एक बार इस सल्तनतकी गुलामी दूर हो जाय तो भले हम पर अफ़गानिस्तानका हमला हो, हम उससे निबट लेंगे। लेकिन मैं तो अहिंसामें विश्वास रखनेवाला आदमी हूँ। मेरा विश्वास है कि सविनय क़ानून-भंग करके हम खूनकी नदी बहाये बिना स्वतंत्रता हासिल कर सकते हैं और दूसरे किसी देशमें न चला हो ऐसा स्वराज्य हिन्दुस्तानमें चला सकते हैं। यह भले ही छोटा मुँह बड़ी बात लगती हो, लेकिन अगर तुम सबकी यह श्रद्धा हो कि हम सत्य और शांतिके मार्ग पर चलकर स्वराज्य पा सकेंगे तो सब कुछ अच्छा ही होगा। यह चीज़ दूर नहीं है। इसी साल हमें यह हालत पैदा कर देनी चाहिये। जवाहरलालके जैसे नौजवान हमें सभापतिके रूपमें बार बार नहीं मिलेंगे। हिन्दुस्तानमें नौजवानोंकी कमी नहीं है; लेकिन जवाहरलालकी बराबरी कर सके ऐसे किसी नौजवानको मैं नहीं जानता। तुम ऐसा कह

सकते हो कि इतना मेरा उन पर प्रेम या मोह है। लेकिन यह प्रेम या मोह उनकी शक्तिके अनुभव पर है, इसलिए मैं कहता हूँ कि उनके हाथमें जब तक बागडोर है तब तक हम अपनी चाही हुई चीज़ पा लें तो कितना अच्छा हो! लेकिन हम तभी कुछ कर सकते हैं कि जब इस काममें मुझे तुम्हारी पूरी पूरी मदद मिले। मैं यह आशा रखता हूँ कि स्वराज्यकी जो लड़ाई शुरू होगी उसमें तुम लोग सबके आगे रहोगे। तुम्हारा यहाँका ९ वर्षका अनुभव फला हो, अपने आचार्य और अध्यापकोंके लिए तुम्हारा आदर और प्रेम सच्चा हो तो उसे साबित करनेका, तुममें कुछ शक्ति हो तो उसे बतानेका समय आ रहा है।

लेकिन अब जो काम हमारे सामने आयेगा वह बड़ा कठिन काम होगा। वह काम जेल जानेका नहीं होगा। जेलमें जाना तो बहुत आसान है; और हमारी निस्बत ख़ूनी, चोर, लुटेरेके लिए वह ज़्यादा आसान है, क्योंकि उन्हें जेलमें रहना आता है। लेकिन वे लोग वहाँ पन्द्रह बरस रह कर जेलको अपना घर बना लेते हैं, इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वे देशकी सेवा करते हैं। इसलिए सिर्फ़ जेल जानेमें कोई सेवा नहीं है। लेकिन तुम लोगोंसे मैं जेल जानेकी, फाँसी पर चढ़नेकी योग्यताकी माँग करता हूँ। यह योग्यता बहुत बड़ी शुद्धिसे मिल सकती है। १९२१ में हमने आत्मशुद्धिकी प्रतिज्ञा की थी। आज मैं तुमसे अधिक आत्मशुद्धिकी आशा रखता हूँ। आज देशमें — हवामें — जहाँ तहाँ हिंसा दिखाई देती है। लेकिन तुम्हारे भीतर ऐसी हिंसामें जल मरनेकी ताक़त होनी चाहिये। तुम सत्य और अहिंसाको अगर अपने भीतर मूर्त रूप देना चाहते हो, तो मेरी गिरफ़्तारीके बाद देशमें मार-काट और ख़ून-ख़राबा मचनेकी हालतमें मैं यह बात नहीं सुनना चाहूँगा कि तुम घरमें घुसकर बैठे रहे, या आग लगानेवालेको पलीता जलाकर देते रहे, या मार-काट अथवा लूट-खसोटमें हिस्सा लेते रहे। यह बात मेरे कान पड़ेगी तो मेरी हालत मरने जैसी हो जायगी। जेलमें जानेसे अधिक कठिन बात तो यह है

कि जब तुम पूर्ण स्वराज्यके सच्चे सिपाही बनो उस समय न तो तुम घरमें बैठो और न हिंसामें शरीक हो। घरमें बैठे रहोगे तो तुम नामर्द माने जाओगे और हिंसामें शरीक होगे तो तुम्हारी बदनामी होगी। हमारा काम आसपासकी ज्वालाओंमें जलकर, भस्म हो कर ही उन्हें बुझाना होगा। तुम्हारी अहिंसाकी प्रतिज्ञा ऐसी है, तुम्हारी साख ऐसी जम गई है कि गुजरातमें हिंसावादी भी तुमसे उसी बातकी आशा रखेगा जो मैं कह रहा हूँ। व्यभिचारी आदमी भी संन्यासीसे संयमकी और संन्यासकी ही आशा रखता है। उसी तरह तुम अगर सत्य और अहिंसाका रास्ता छोड़ोगे, तो हिंसावादी तुम्हारी निंदा करेगा। कोई वेश्या भी अगर अच्छे आदमीके संपर्कमें आयेगी तो वह उसे व्यभिचार करनेसे सावधान करेगी। लेकिन मान लो कि हमारे हिंसावादी इन लोगोंसे भी ज्यादा बुरे हों और तुम्हें हिंसामें शामिल करें या शामिल होने दें, तो भी अंतमें तो वे तुम्हारी निन्दा ही करेंगे।

इसलिए जेल जानेके लिए तुम भले ही तैयार रहना। लेकिन जिस दिन हिन्दुस्तानमें सविनय क़ानून-भंगका समय आयेगा उस दिन तुम्हें जेलमें कोई नहीं ले जायगा, बल्कि जलती आगको बुझानेकी तुमसे आशा रखेगा; और यह काम तुम आगमें अपने आपको होमकर ही कर सकोगे, और किसी तरहसे नहीं। अगर तुम आगमें अपनेको होम न सको, तो सचमुच यह मान लेना कि तुम जेलमें जाने लायक भी कभी नहीं थे। इसलिए तुम्हारे मनमें कहीं छिपी-छिपी भी हिंसा पड़ी हो तो उसे निकाल फेंकना और रचनात्मक कार्यक्रममें मस्त रहना।

सविनय क़ानून-भंग कैसा होगा, इसका मुझे पता नहीं। लेकिन कुछ न कुछ तो हमें करना ही होगा। मैं रात-दिन इसी बातका रटन करता रहता हूँ, क्योंकि यह सविनय क़ानूम-भंग कैसा होगा इसे खोजनेकी ज़िम्मेदारी ख़ास तौर पर मेरी ही है। सत्य और अहिंसाको कोई आँच न आये और फिर भी सविनय क़ानून-भंग हो सके — इस पहेलीको मैं ही सुलझा सकता हूँ।

यह सब मैं तुम्हें झूठा उत्साह दिलानेके लिए नहीं, बल्कि तुम्हें जाग्रत करनेके लिए कह रहा हूँ। इस बातको तुम अच्छी तरह समझ लोगे तो मेरे वचन तुम्हारे हृदयमें उतर जायेंगे। कल ही कुछ हो जायगा ऐसा न मानना, हालाँकि सत्य और अहिंसाके रास्ते सविनय क़ानून-भंग करनेके लिए मैं अधीर हो उठा हूँ। लेकिन अगर सत्य और अहिंसाका त्याग किये बिना सविनय क़ानून-भंग न हो सके, तो सैकड़ों बरस तक राह देखनेका धीरज भी मुझमें है। यह धीरज और यह उतावली मेरी अहिंसासे ही पैदा हुई है — उतावली इसलिए कि अगर हममें पूरी अहिंसा हो तो स्वराज्य कल ही क्यों न मिले? और धीरज इसलिए कि अहिंसा न हो तो स्वराज्य कैसे मिल सकता है? दोनों बातोंका सार यह है कि दुनियाके दूसरे भागोंके लिए चाहे जो हो, लेकिन हिन्दुस्तानके लिए तो अहिंसाका रास्ता ही छोटेसे छोटा रास्ता है। मेरी तुम सबसे विनती है कि अहिंसाके रास्तेसे स्वराज्य पानेमें तुम साक्षी बनो, सहायक बनो।

१२

राष्ट्रीय शिक्षामें निष्ठा रखनेवालोंका कर्तव्य

[१३, १४ और १५ जनवरी, १९३० को भारतकी राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओंका एक सम्मेलन अहमदाबादमें हुआ था। उसमें इकट्ठे हुए राष्ट्रीय शिक्षामें निष्ठा रखनेवाले लोगोंके सामने गांधीजीने नीचे दिया हुआ भाषण किया।]

राष्ट्रीय विद्यापीठकी कल्पना ही असहयोगके सिलसिलेमें की गई थी। और उस अवसर पर जैसा मैंने अहमदाबादमें कहा था, विद्यापीठका कर्तव्य स्वराज्य प्राप्त करना है, इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों और ऐसी संस्थाके शिक्षकोंको वही करना चाहिये जो स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए देशको करना है, और दोनोंको वही

शक्ति अपने भीतर बढ़ानी चाहिये जो देशको अपने भीतर बढ़ानी है—ताकि स्वराज्यके यज्ञका आरंभ होने पर दोनों अपनेको उसमें होम कर भस्म हो जायें।

स्वराज्यकी लड़ाई आत्मशुद्धिकी लड़ाई है और स्वराज्य पानेके लिए सबको शुद्ध बनना चाहिये। कुछ लोगोंका यह ख़याल है कि राज-नीतिके साथ नीति या सदाचारका कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारे नेताओंकी नीति कैसी है, इसका विचार कौन करता है? यूरोप और अमेरिकामें जो प्रजातंत्र चल रहे हैं वे इसी ख़याल पर चल रहे हैं। गंदा जीवन बितानेवाले भी अत्यन्त बुद्धिमान होते हैं, इस ख़यालसे उनका काम चलता है। इंग्लैंडकी आम सभा (लोकसभा) का इतिहास देखें, तो उसके नेताओंके व्यवहारमें बड़ी गंदगी मालूम होगी। हम भी असह-योग आंदोलनके पहले इसी तरह अपनी राजनीति चलाते थे। कांग्रेसके प्रतिनिधियों या नेताओंकी नीतिके बारेमें हम कुछ नहीं जानते थे। लेकिन १९२० से हमने निश्चय किया कि कांग्रेसके प्रतिनिधियोंमें नीतिकी अमुक योग्यता होनी ही चाहिये। इस बातका विरोध अब खुले आम तो कोई नहीं करता, हालाँकि मनमें बहुतसे लोग ऐसा मानते हैं कि राजनीतिके साथ नीति या सदाचारका कोई सम्बन्ध नहीं। इसी कारण हमारी गति धीमी है, रुक जाती है। १९२० की प्रतिज्ञा अगर हमने पाली होती, तो स्वराज्य प्राप्त करनेमें हमें ९ बरस न लगते। अगर स्वराज्य हमारी सभ्यताको शुद्ध और टिकाऊ बनानेके लिए न हो, तो वह निकम्मा है। हमारी सभ्यताका अर्थ है कि नीतिको हर तरहके व्यवहारमें—फिर उसका सम्बन्ध धर्मसे हो, राज्यसे हो या समाजसे हो—सबसे ऊँचा स्थान दिया जाय।

और विद्यापीठोंमें तो हमने सभ्यता सिखानेका काम ही हाथमें लिया है। इसलिए स्वराज्यके यज्ञमें सबसे बड़ा बलिदान विद्यापीठोंका होना चाहिये। सविनय क़ानून-भंगमें सबसे बड़ा हिस्सा राष्ट्रीय विद्या-

लयोंका होगा। तुम्हारे जीवनमें दूसरी एक भी चीज़ इससे अधिक प्रधान स्थान नहीं ले सकती।

कांग्रेसने निश्चय किया है कि सत्य और अहिंसाके बिना स्वराज्य हासिल नहीं किया जा सकता। मैं चाहता हूँ कि विद्यापीठोंके विद्यार्थी और शिक्षक इस बातको विशेष रूपसे समझें और मानें। वे इन दोनोंको अगर प्रयोगके रूपमें ही स्वीकार करें, तो फिर मैं कहाँ जाऊँ? लेकिन अगर तुम मानो कि सत्य और अहिंसा दोनों स्वराज्य-प्राप्तिके लिए ज़रूरी हैं, तब तो इन दोनोंके बारेमें मुझे तुम्हारे सामने दलील करनेकी भी ज़रूरत न रह जाये। कोई आदमी विद्यापीठका विद्यार्थी है या शिक्षक है, इतनी ही बात उसके सत्यवादी और अहिंसक होनेका प्रमाणपत्र होनी चाहिये। इसलिए इस सम्मेलनका और सब विद्यार्थियोंका पहला कर्तव्य यह है कि सब अपने हृदयको टटोल कर विचारें कि आज तकके अपने सब काम हमने सत्य और अहिंसाको अपना ध्येय मानकर किये हैं या दूसरी तरहसे किये हैं। अगर आपने इन दो चीज़ोंको 'पॉलिसी' (कुछ समयके साधन) मानकर अपने कार्य किये होंगे, तो आप किसी दिन दूसरे साधनोंका प्रयोग करनेके लिए भी तैयार हो जायेंगे — जिस तरह अलीभाई अहिंसाको कुछ समयके साधनके रूपमें मानते थे और कहते थे कि अहिंसाको हम धर्मके रूपमें स्वीकार नहीं करते। ऐसे लोग बहुत हैं और वे हमारे कामके हैं; लेकिन विद्यापीठोंके लिए यह भावना काफ़ी नहीं। विद्यापीठोंके विद्यार्थियों और शिक्षकोंके मनमें यह निश्चय हो जाना चाहिये कि अहिंसा हमारा धर्म है। लेकिन हिन्दुस्तानमें सभी लोग अगर अहिंसाको 'पॉलिसी' के रूपमें मानें और अकेला मैं ही उसे धर्म माननेवाला रहूँ, तो हमारा काम बहुत धीमा चलेगा। इसलिए हम अपने दिलसे पूछें और अगर हमें यह जवाब मिले कि स्वराज्यके लिए हम कभी हिंसाका और असत्यका विचार भी नहीं करेंगे, तो फिर सब कुछ ठीक ही होगा।

रचनात्मक कार्य भी सत्य और अहिंसाके विचारसे ही निकला है। इसके एक एक अंगका हम विचार करें। हिन्दुओंके दिलमें मुसलमानोंके लिए और मुसलमानोंके दिलमें हिन्दुओंके लिए अहिंसा हो, तो ही दोनोंकी एकता संभव है। लाहौर कांग्रेसमें क़ौमी सवालके हलका जो प्रस्ताव रखा गया था वह इसी दृष्टिसे रखा गया था। सिक्ख कहते थे कि हमें न्याय मिले तो काफ़ी है। जो प्रस्ताव वहाँ पास हुआ है वह केवल सिक्खोंके लिए ही नहीं, लेकिन सारे देशके लिए पास किया गया है।

अस्पृश्यताकी बातको लीजिये। कोई छूनेकी बात करते हैं, कोई पानी पीनेकी सुविधाकी बात करते हैं और कोई शाला व मंदिरकी बात करते हैं। इस बारेमें आपकी स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि आपकी आँखोंमें उमड़ते प्रेमको देखकर ही अछूतोंको लगे कि ये तो हमारे आदमी हैं। तभी आप उनके साथ रचनात्मक कार्यमें पूरा पूरा हिस्सा ले सकेंगे।

शराबबन्दीके बारेमें भी यही सिद्धान्त लागू किया जा सकता है। अब रह गई एक खादीकी बात। लेकिन यहाँ खादीकी बात करना भी क्या ज़रूरी है? कताईका और खादीका काम ऐसा है कि आदमी अगर अपने किये हुए कामकी डायरी रखे, तो सीधा हिसाब लगा सकता है कि उसने देशके धनमें कितनी बढ़ती की है। अगर इस भावनासे हमने काम किया होता, तो आज तक हम कितने ही आगे बढ़ गये होते।

पिछले बरस हुए थोड़े-बहुत कामसे भी हम कितना असर डाल सके हैं, यह आपको विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समितिने बताया है। मेरे हिसाबसे तो वह असर बहुत ही थोड़ा है। अगर हम सबका इस कार्यमें सम्पूर्ण विश्वास होता, तो जितना हुआ उससे कहीं ज़्यादा असर हुआ होता। आज ईमानदार और कुशल कार्यकर्ताओंकी ज़रूरत है। लेकिन आजके राष्ट्रीय विद्यार्थियों और शिक्षकोंमें भी काम करनेकी

शक्ति और इच्छा न रखनेवाले अनेक लोग मैंने देखे हैं। मेहनत-मशक़्क़त हममें से बिलकुल ग़ायब हो गई है। इसके कारणोंकी चर्चा करना यहाँ ठीक नहीं होगा। लेकिन इतना समझ लें तो बस होगा कि हमें इस अविश्वासको अपने भीतरसे निकाल फेंकना है।

अभी तक मैंने यह कहा कि हमें कितना कुछ करना चाहिये। अब मैं यह बताता हूँ कि हमें क्या नहीं करना चाहिये। अक्षर-ज्ञान, साहित्य-विलास, अंग्रेज़ीका ज्ञान — इन सब चीज़ोंका त्याग ज़रूरी लगे, तो स्वराज्यके ख़ातिर हमें इनका त्याग करना चाहिये। सारे ही राष्ट्रीय विद्यालय कांग्रेसके कार्यक्रमके कारख़ाने बन जाने चाहिये। हिन्दुस्तानमें करोड़ों बालक ऐसे हैं जिन्हें नामकी भी शिक्षा नहीं मिलती, तब फिर अंग्रेज़ी शिक्षाकी तो बात ही क्या की जाये? ऐसी हालतमें जब तक स्वराज्य न मिले तब तक हम इस शिक्षाका त्याग क्यों न करें?

कांग्रेस कार्यसमितिका प्रस्ताव है कि कांग्रेसके सदस्य बनाये जाने चाहिये, स्वयंसेवक बनाये जाने चाहिये। इस कामके लिए दूसरी अलग संस्थाकी ज़रूरत क्यों होनी चाहिये? हम सब कांग्रेसके सदस्य और स्वयंसेवक बनकर दूसरोंको भी सदस्य और स्वयंसेवक क्यों न बनाने लगें? पिछले विश्वयुद्धमें यूरोपके विद्यार्थियोंने कितना महान त्याग किया था! क्या हम उतना त्याग करनेको तैयार हैं? जब तक आज़ादी नहीं मिलती तब तक हमें साँस लेनेका भी अधिकार नहीं है, ऐसा हम मानें तो दिन-रात पूरे कार्यक्रमकी ही धुन हमें लगी रहे, हम उसी पर अमल करें और दूसरोंसे भी करायें।

अंतमें एक बात और। हमारा कर्तव्य क्या है इसे एक शब्दमें कहूँ तो वह है — मरनेके लिए तैयार हो जाओ। शुद्ध आदमीका ही बलिदान स्वीकार किया जाता है। जिस तरह हमें शुद्ध होना चाहिये उसी तरह हमें मृत्युका डर छोड़ना चाहिये। एक साहब

कहते हैं: "गांधी भले ही कहे कि अंग्रेजोंके हिन्दुस्तानसे चले जानेसे कोई नुक़सान नहीं होगा; लेकिन सच्ची बात यह है कि अगर अंग्रेज़ चले जायें, तो हिन्दुस्तानके पैसेदारोंके पास पैसा न रहेगा और एक भी कुमारी पवित्र न रहेगी।" इससे पता चलता है कि उनके मनमें हमारे लिए कितनी नफ़रत है। लेकिन वे ऐसा क्यों न कहें? आज हम इतने डरे हुए हैं कि अपनी जायदाद और अपनी लड़कियोंके शीलकी रक्षाके लिए हम राजपूतों और पठानोंका सहारा खोजते हैं। अगर हमें मृत्युका डर न हो तो हम तुरन्त इस हालतसे बाहर निकल जायें। विद्यापीठमें पढ़नेवाली हर कुमारीसे मैं कहता हूँ कि "तू सावधान हो जा; तू अपनेमें इतनी वीरता पैदा कर ले कि कोई बदमाश तुझे छूनेकी भी हिम्मत न कर सके।" तुम्हारे भीतरसे डर इस हद तक दूर हो जाना चाहिये कि स्वराज्यकी लड़ाईके इतिहासमें यह लिखा जा सके कि हिन्दुस्तानमें जब मार-काट और दंगे-फ़साद चलते थे उस वक्त राष्ट्रीय विद्यालयोंके विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोंने उसमें न केवल हिस्सा नहीं लिया, बल्कि उस भयंकर आगको बुझानेके प्रयत्नमें वे जलकर भस्म हो गये। यह हुआ तो तुम्हारी मृत्युकी यादमें जयस्तंभ खड़े किये जायेंगे।

अपनी रक्षाके लिए किसीको मारना ज़रूरी नहीं — उसके लिए हमारे भीतर मरनेकी ताक़त होनी चाहिये। मनुष्यमें अगर मरनेकी शक्ति पूरी तरह आ जाये, तो किसीको मारनेकी उसे इच्छा ही नहीं होती। इसमें तो उलटे त्रैराशिकका हिसाब लगाना चाहिये: मरनेकी इच्छा मनुष्यमें जितनी ज़ोरदार होगी उतनी ही उसकी मारनेकी इच्छा मंद होगी। इतिहास यह बताता है कि मनुष्य जब करुणामय बनकर मरता है तब वह मारनेवालेके दिलको बदल देता है।

मेरे इतना कहनेसे तुम घबरा मत जाना। एक ओर तुम मरनेके लिए तैयार रहना और दूसरी ओर सदा आजके कर्तव्यमें जुटे रहना।

आखिरमें एक सवालका जवाब देते हुए गांधीजीने कहा :

तुम पूछते हो कि जब मैं विद्यार्थियोंसे इतनी बड़ी बड़ी आशायें रखता हूँ, तो मैंने कांग्रेसमें सरकारी शालाओं और विद्यालयोंके बहिष्कारका प्रस्ताव क्यों नहीं रखा। इसका जवाब यह है कि वहाँ ऐसी हवा नहीं थी। लेकिन तुम यह न पूछना कि हवा नहीं थी तो इसके लिए ये विद्यार्थी क्या करें? ये विद्यार्थी सैकड़ों विरोधी ताक़तोंके सामने टिके हुए हैं। ये लोग शुद्ध रूपमें अपने कर्तव्यका पालन करें, इन लोगोंको अपने कर्तव्यके सिवा और किसी बातमें शांति न मिले, तो इनके कामका ही ऐसा असर पड़ेगा कि ये दूसरे विद्यार्थियोंको सरकारी शालायें और विद्यालय छोड़नेके लिए मजबूर कर देंगे।

१३

नवाँ पदवीदान-समारंभ

[ता० ११–४–१९३१ को हुए नवें पदवीदान-समारंभमें नये स्नातकों तथा ग्रामसेवा-दीक्षितोंको प्रमाणपत्र देनेके बाद उन्हें आशीर्वाद देते हुए गांधीजीने नीचेका भाषण दिया।]

विद्यापीठ ग्रामसेवाके लिए है

तुम्हें — स्नातकों और ग्रामसेवा-दीक्षितोंको — अपने आशीर्वाद मैंने तभी दे दिये जब मैंने इस कागज़ पर लिखी हुई बातें पढ़ीं। लेकिन अपने हृदयके आशीर्वाद मैं तुम्हें अब दूँगा। मैं यह उम्मीद करता हूँ कि तुम्हें जो प्रमाणपत्र मिले हैं उनके लिए तुम अपने मनमें गौरवका अनुभव करोगे और अपनी उपेक्षा नहीं करोगे। मैं यह उम्मीद भी रखूँगा कि जो प्रतिज्ञा अभी तुमने ली है उसका तुम पूरी तरह पालन करोगे। लिखी हुई या छपी हुई प्रतिज्ञाको मुँहसे बोल जाना तो आसान है। लेकिन प्रतिज्ञाको दिलमें उतारना और मनमें संकल्प

करना कि इस प्रतिज्ञाका पालन मुझे हर हालतमें करना ही है, कठिन है। मैं ऐसी उम्मीद ज़रूर रखता हूँ कि इस विद्यापीठके बारेमें या राष्ट्रके लिए जितने काम चलते हैं उनके बारेमें एक भी शब्द बिना विचारे, असावधानीमें नहीं कहा जायेगा। इसे मैं ऊपर चढ़नेकी पहली सीढ़ी मानता हूँ। विद्यार्थियोंके लिए अवश्य ही ऐसा होना चाहिये, वर्ना यह निश्चित है कि उनके चरित्रका पाया कच्चा रह जायगा। यहाँ स्नातक और ग्रामसेवा-दीक्षितके बीच जो भेद किया गया है वह ठीक है। सत्यकी रक्षा करनी हो तो यह भेद दिखाना ही चाहिये। स्नातकोंका पाठ्यक्रम अलग है, उन्हें ज़्यादा समय तक यहाँ शिक्षा लेनी पड़ती है। लेकिन मैं चाहता हूँ कि इस वजहसे ग्रामसेवा-दीक्षित अपनेको नीचा न समझें। यह काम ऐसा-वैसा नहीं है। यह हो सकता है कि स्नातकने यहाँ ज़्यादा बरस बिताये हों, ज़्यादा विषयोंका अध्ययन किया हो, तो भी ग्रामसेवक स्नातकसे आगे बढ़ जाये। इससे मुझे आश्चर्य नहीं होगा। आगे बढ़ जानेके अनेक साधन ग्रामसेवकके पास हैं। मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा कि स्नातकोंसे ज़्यादा ज़रूरत हमें ग्रामसेवा-दीक्षितोंकी है, क्योंकि विद्यापीठकी शुरुआत हुई तभीसे मैं कहता आया हूँ कि विद्यापीठके द्वारा हमें सारे गाँवोंमें पहुँच जाना है। स्नातकके मनमें भी ऐसी आशा होनी चाहिये और उसका प्रयत्न गाँवमें जाकर ग्रामवासियोंकी सेवा करना होना चाहिये। स्नातकको खुद ही यह समझ लेना चाहिये कि उसने गूजरात विद्यापीठमें इतने वर्ष क्यों बिताये हैं। मुझे आशा है कि जिन लोगोंने ग्रामसेवाकी दीक्षा ली है वे उसे सुशोभित करेंगे। मैं यह नहीं कह सकता कि आज भी हमें इस बातकी पूरी समझ आ गई है कि हमें यानी विद्यार्थियोंको देशकी सेवा कैसे करनी है।

असफल सरकारी शिक्षा

लेकिन यह टीका तो प्रस्तावनाके रूपमें है। अब मैं जो कहना चाहता हूँ वह ज़्यादातर तारीफ़ ही है। कराड़ीमें मेरे गिरफ़्तार हो

जानेके बाद हिन्दुस्तानमें जो कुछ हुआ वह मैंने अखबारोंके ज़रिये ही जाना। जेलसे रिहा होने पर लोगोंसे भी मैंने उसके बारेमें सुना। विद्यापीठने आज़ादीकी लड़ाईमें जो हिस्सा अदा किया उसके बारेमें मैंने इतनी बातें सुनी हैं कि मेरा हृदय आनंदसे उछलने लगा है। गूजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ तथा काशी विद्यापीठके बारेमें मैं अधिक जान सका हूँ। इन तीनों विद्यापीठोंसे अध्यापक और विद्यार्थी निकल पड़े, यह कोई मामूली बात नहीं है। जब इस लड़ाईका इतिहास लिखा जायगा तब संसारको भी यह जानकर हर्ष होगा कि लड़ाईमें विद्यार्थियोंने कितना हाथ बँटाया है और राष्ट्रीय विद्यापीठोंने इस लड़ाईकी प्रतिष्ठा कैसे बढ़ाई है। जेलमें पड़ा पड़ा मैं विद्यापीठोंके विद्यार्थियों और अध्यापकोंके बारेमें कुछ भी अखबारोंमें पढ़ता तब तुरंत मैं सरकारी शालाओंके साथ उनकी तुलना कर लेता था। इस तुलनाके बाद यह बात मेरे सामने दीये जैसी स्पष्ट हो जाती थी कि १९२० में सरकारी शालाओंके बहिष्कारका जो कार्यक्रम हमने रखा वह कितना उचित था। यह सच है कि सरकारी मदरसे और शाला-कॉलेज आज भी विद्यार्थियोंसे भरे ही रहते हैं। इससे भी ज़्यादा सच और दुःखकी बात तो यह है कि वहाँ जानेके लिए विद्यार्थी इतने आतुर होते हैं कि वे माफ़ी माँगते हैं, जुर्माना भरते हैं, किसी भी तरह वहाँ चले जाते हैं। इससे उन कॉलेजोंके प्रिन्सिपाल या शिक्षा-अधिकारी ऐसे सर्क्यूलर निकालते हैं कि जिन विद्यार्थियोंने इस लड़ाईमें सीधा या टेढ़ा भाग लिया हो या जो विद्यार्थी जेलमें गये हों, उन्हें दाख़िल करनेसे पहले मुख्य शिक्षा-अधिकारीको सूचना की जाय। ऐसे विद्यार्थियोंके बारेमें जाँच-पड़ताल की जाय और फिर उन्हें कॉलेजमें दाख़िल किया जाय। जो विद्यार्थी इस तरह दाख़िल हों, उनके बारेमें क्या कहा जाये? जो शिक्षा-अधिकारी ऐसी शर्तें रखे, उसके बारेमें भी क्या कहा जाये? हिन्दू युनिवर्सिटीके बारेमें सरकारने जो नीति अपनाई है वह तुमने देखी होगी। पूज्य पंडित

मालवीयजी ऐसे-वैसे योद्धा नहीं हैं। मैं भीतरका इतिहास जानता हूँ इसलिए कहता हूँ कि मालवीयजीकी निडरतासे, हिम्मतसे और त्याग करनेकी तैयारीसे हिन्दू युनिवर्सिटी इस समय बच गई है; यानी उसे जो बड़ी सरकारी ग्रांट मिलती थी वह बंद नहीं हुई। हुई होती तो मालवीयजीकी आँखोंसे एक भी आँसू नहीं गिरता। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि अगर एक भी विद्यार्थी हिन्दू युनिवर्सिटीमें दाखिल न हो सके तो सरकारी ग्रांट न ली जाये। इस उदाहरणसे यह मालूम होता है कि सरकारी दान लेनेवाले शाला-कॉलेजों और हमारी शालाओं और विद्यालयोंके बीच कितना फ़र्क़ है।

विद्यापीठका हिस्सा

सरकारी कॉलेजोंकी बात मैंने कही। दूसरी ओर मैं विद्यापीठके निवेदनके परिशिष्ट–३ की ओर तुम्हारा ध्यान खींचता हूँ। उसमें उन अध्यापकों और विद्यार्थियोंके शुभ नाम दिये गये हैं, जो जेलमें गये थे, और उन्हें धन्यवाद दिया गया है। काकासाहबने कहा है कि विद्यार्थियोंने जो विद्या पिछले एक बरसमें पाई है वह पहले कभी नहीं पाई थी। विद्यापीठ तो वैसेका वैसा था, राष्ट्रीय भी था, फिर भी ऐसी विद्या उन्होंने पहले नहीं पाई थी। और इसके बाद आगे जब कभी हम जेलोंमें जायेंगे या जेल जानेका कार्यक्रम बनेगा, उस समय भी वे ऐसी ही विद्या पायेंगे। हम यह विचार करते हैं कि उस समय हम विद्याका सच्चा दान देंगे। इससे सार तो हमें यह निकालना है कि स्नातक और ग्रामसेवा-दीक्षित यह न मानें कि हम किसी मामूली विद्यापीठके स्नातक या ग्रामसेवा-दीक्षित हैं। क्या करें? पेटका सवाल है; और जब इसमें आ फँसे हैं तो इसका नाम रोशन कर दें। यह तुम सपनेमें भी मत सोचना। भले ही तुम अंजलि जितने लगो, फिर भी तुम सागर जितने हो; और सरकारी कॉलेजोंके विद्यार्थी भले सागर जितने लगें, तो भी वे मृगजल जैसे ही हैं। उनमें स्वराज्य लेनेकी शक्तिका सिंचन करना असंभव नहीं तो कठिन ज़रूर है। राष्ट्रीय

विद्यापीठोंमें उस शक्तिका कितना सिंचन हुआ है, यह हम इन विद्यार्थियोंमें देख सकते हैं। उनके किये हुए कामको जिन्होंने देखा है वे इस बातका सबूत दे सकेंगे कि विद्यापीठकी स्थापना करके हमने कुछ खोया नहीं। इसलिए यहाँ आये हुए भाई और बहन यह विश्वास करें कि विद्यापीठके लिए हमने जो पैसे दिये हैं उन्हें हमने ब्याजके साथ वसूल कर लिया है। ऐसा विश्वास आपको न हो तो मेरी आपको यह सलाह है कि निवेदनमें लिखी हुई बातोंके बारेमें आप जाँच करें और गहराईमें उतर कर देखें कि उसमें जो कुछ लिखा है वह दिखाने भरके लिए है या सही है। आप अध्यापकों और विद्यार्थियोंसे मिलें और उनकी परीक्षा करें। आपकी दृष्टिमें ऐसी कोई सरकारी शाला या कॉलेज है, जिसके बारेमें आप नीचेका पैरा लिखा देख सकें? इसमें कितनी लड़कियोंका नाम आता है! इन सबका मुझे पता नहीं था। लेकिन मैंने मनमें सोचा कि इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? यह पैरा विद्यापीठके निवेदनमें विशेष महत्त्व रखता है। वह इस प्रकार है। खुरशेद बहनके कामका ज़िक्र करनेके बाद उसमें लिखा गया है:

"यहाँ इस बातका उल्लेख किया जाना चाहिये कि विद्यापीठकी दो विद्यार्थिनियों — चि० मृदुलाबहन और चि० रमाबहनने — अहमदाबादमें विदेशी कपड़ा बहिष्कार समितिमें पिकेटिंगका काम और दूसरे काम किये हैं। चि० मृदुलाबहन तो एक बार सरकारकी मेहमान भी बन आई हैं। इस लड़ाईमें मृदुलाबहनका हिस्सा मामूली नहीं है। विद्यापीठकी पुरानी विद्यार्थिनियोंमें से श्री मणिबहन पटेल, श्री इन्दुमती शेठ, चि० तारा मशरूवाला, चि० वसुन्धरा, चि० ज्योत्स्ना और चि० प्रमिलाने भी इस लड़ाईमें महत्त्वका भाग लिया है।"

विद्यार्थिनियाँ इस लड़ाईमें सौ फ़ी सदी शामिल हुई हैं। १६ बरससे ऊपरके विद्यार्थी क़रीब क़रीब सब शामिल हुए। १६ बरसके नीचेके विद्यार्थियोंका इतिहास अलग है, जिसमें यहाँ मैं जाना नहीं चाहता।

मैंने विद्यापीठकी स्थितिकी जो कल्पना आपको कराई है उससे अधिक कल्पना आपको आये, इसी खयालसे मैंने ये पैरे आपको पढ़ सुनाये हैं। एक ओर मैं स्नातकों और ग्रामसेवा-दीक्षितोंको प्रोत्साहन देना चाहता हूँ; तो दूसरी ओर यहाँ आये हुए भाई-बहनोंका ध्यान मैं उस भिक्षा-की ओर खींचना चाहता हूँ, जो काकासाहबने उनसे माँगी है। मेरा विश्वास है कि आप विद्यापीठको चिन्ताकी हालतमें नहीं रखेंगे, आप ऐसी हालत कभी पैदा नहीं होने देंगे कि विद्यापीठके सेवकोंको आपके पास चन्दा उगाहने आना पड़े।

जनताके पैसेकी कंजूसी

इतना कहकर अब मैं दूसरी बात पर आना चाहता हूँ। विद्यापीठका हिसाब निवेदनमें दिया गया है; उसे आप लोग देखें। आप यह भी देख लें कि वह हिसाब क्या दिखाता है, उसके पीछे कौन कौनसी बातें हैं। ऐसा कहनेका कारण यह है कि यहाँकी व्यवस्था काफ़ी किफ़ायतशारीसे की जाती है, पैसे यहाँ उड़ा नहीं दिये जाते। मैंने 'काफ़ी' विशेषणका प्रयोग किया है, क्योंकि मैं मानता हूँ कि जनता-के पैसेका उपयोग कंजूसकी तरह करनेकी विद्या जितनी मैंने सीखी है उतनी शायद ही दूसरे किसीने सीखी हो। मैंने जवानीमें ही यह सीख लिया था कि हम अपने पैसेका जिस कंजूसीसे उपयोग करते हैं उसकी निस्बत जनताके पैसेका हमें ज्यादा कंजूसीसे उपयोग करना चाहिये। किसीमें कमानेकी ताक़त हो तो वह अपना पैसा खुले हाथों खर्च कर सकता है, लेकिन जनताका पैसा वह अपने पैसेकी तरह खर्च नहीं कर सकता। हमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि पैसे देनेवाली जनता ग़रीब है और हम उसका पैसा खर्च कर रहे हैं। यह बात सोलहों आने सच है, क्योंकि हिन्दुस्तान जैसा ग़रीब देश इस दुनियामें दूसरा नहीं है। इसकी ग़रीब जनताके मुक़ाबले महलोंमें रहनेवाले राजा या करोड़पति किस गिनतीमें हैं? राजाओं और करोड़पतियोंको ध्यानमें रख कर अगर हम ग़रीबोंको भूल जायें, तो

हमारे जैसा मूर्ख कोई नहीं होगा। इस बातकी याद मैं इसलिए दिलाता हूँ कि यहाँ मेरे साथी बैठे हैं और उनके पास भी व्यवस्थाका काम है। सरदारने मुझसे कहा है कि हमारे पास पैसे कम हैं और नाच हमें बहुत नाचने हैं। खर्चके जितने बजट बने हैं उन सबको पास कैसे किया जाय? सरदारसे मैंने कह दिया है कि तुम क़लम हाथमें ले लेना और जितने बजट नापास करने जैसे हों उन्हें नापास कर देना। आज सरकारके साथ जो समझौता हुआ है उसमें से पक्का समझौता होनेकी कामना हम करते हैं। पक्के समझौतेके लिए मैं भरसक प्रयत्न करूँगा। लेकिन क़ुदरतके ख़िलाफ़ कोई आदमी कभी नहीं जा सका है; मैं भी नहीं जा सकता। और क़ुदरत अभी हमारे ख़िलाफ़ है। वह अगर सरकारके साथ पक्का समझौता न होने दे, तो फिर जो युद्ध होगा वह भयंकर होगा। उसमें हम सब मर मिटेंगे। जो मुल्क लम्बे समयसे गुलामीकी मूर्छामें पड़ा है, उसके लिए एकदम स्वराज्यका चलाना अच्छा तो है, लेकिन वह मरने जैसा है। फिर भी हमें उसमें आनंद आना चाहिये। उस भयंकर युद्धके लिए हमारे पास एक पैसा भी नहीं है, तो भी हमें लड़ना आना चाहिये। हमारे पास, गुजरातके पास खूब पैसे आयें और हम उन्हें खुले हाथों ख़र्च करें, तो वे खतम हो जायेंगे। इस तरह तो कुबेरका ख़जाना भी ख़तम हो जायेगा। गुजरातके पास जो पैसे आयें उन्हें हमें कंजूसकी तरह काममें लेना है, कहाँ कहाँ काट-छाँट की जा सकती है और सादगी लाई जा सकती है, इसका हमें हमेशा विचार करना चाहिये।

मैं अपने मनमें हमेशा टीका किया करता हूँ कि हमें इतनी सारी मोटरोंकी क्या ज़रूरत है। मैं मोटरमें बैठता हूँ यह मेरी कमज़ोरी है। वर्ना हमें मोटरकी क्या जरूरत? स्वयंसेवकों, स्नातकों, ग्रामसेवकों और ग्रामसेविकाओंको पैरोंके घोड़ों पर जाना चाहिये। यानी वे पैदल चलें। हमारे हाथमें देशका राजकाज आये, तो हम उसे कैसे चलायेंगे? मैंने ११ बातोंकी सूची तैयार की थी, जो बढ़कर अब २० हो गयी हैं।

उनमें ज़्यादासे ज़्यादा पाँच सौकी तनख़्वाहवाला वाक्य मेरा नहीं लेकिन जवाहरलालका है। जवाहरलाल कौन हैं? उनका पालन-पोषण किस प्रकार हुआ है? वे विचारशील हैं, इसलिए उन्होंने पाँच सौके छह सौ नहीं लिखे। इसीलिए मैं जोशमें आ गया कि जवाहरलालकी ढालका मैं उपयोग कर लूँ। वाइसरॉयको हमारी नौकरी करनी हो, तो वे पाँच सौ रुपयेमें करें। लेकिन उन्हें अगर हम पाँच सौ तनख़्वाह दें, तो हम कितनी लेंगे? पाँच सौके आँकड़ेसे जवाहरलालने और अब कांग्रेसने हमें एक आदर्श दे दिया है। इसी दृष्टिसे हमें अपना ख़र्च चलाना चाहिये। यह मेरी सूचना है और नोटिस भी है। नहीं तो हमारी राज्य-व्यवस्था टूट जायेगी। आज तो विदेशी सरकार बन्दूक़-गोलेके ज़ोर पर प्रजासे महसूल ले सकती है। लेकिन हमारे पास बन्दूक़-गोला नहीं होगा। उस समय ऐसे बहुतेरे गढ़वाली निकलेंगे, जो अपने देशबन्धुओं पर बन्दूक़ चलानेसे इनकार कर देंगे। और हम बन्दूक़ चला कर लोगोंसे महसूल नहीं लेंगे। हम स्वराज्यका उपभोग ग़रीबोंकी तरह ही करेंगे। इसीलिए मैंने यह कह दिया है। यह बात अप्रस्तुत नहीं है। किसीको नींदमें तो रहना ही नहीं है। सरकारके साथ समझौता हो गया है, तो भी हमें सावधान रहना है, सो नहीं जाना है। अब हमें अपनी अधिक शुद्धि करनी है, अधिक एकाग्रता और अधिक सावधानी रखनी है। अगर हम जनताके पैसेका ऐसा उपयोग करें कि एक एक पैसेका हिसाब अपने आपको और दुनियाको दे सकें, तो इसमें कोई शंका नहीं कि हम अपना काम पूरा कर सकेंगे। तुम्हें शुद्ध बलिदान देनेकी बात कहना मेरा धर्म है। अंतमें यही कामना है कि स्नातकों और ग्रामसेवा-दीक्षितोंका कल्याण हो और उन्होंने जो प्रतिज्ञा ली है उसके पालनका बल ईश्वर उन्हें दे।

१४

सेवकोंके साथ

[१९३४ में गांधीजीका उपवास छूटा उसके बाद गूजरात विद्यापीठके सेवकोंमें से कुछ लोग विद्यापीठके भविष्यके बारेमें चर्चा करनेके लिए उनसे मिले थे। उस मौक़े पर गांधीजीने नीचेकी स्पष्टता की थी।]

चलता-फिरता विद्यालय

मैं शुरूसे ही यह मानता और कहता आया हूँ कि विद्यापीठका सच्चा काम गाँवोंमें है। लेकिन अभी तक हम इस विचारसे चले हैं कि यह काम केन्द्रीय संस्था द्वारा ही चलाया जा सकता है। अब मैं एक क़दम आगे बढ़नेके लिए कहता हूँ। और वह यह कि हमारा विद्यापीठ अब गाँवोंमें जाकर बस जाये। अब हम यह सोचें कि गाँवोंमें विद्यापीठके बसनेका क्या अर्थ है।

सत्याग्रह आश्रमको हमने मकानके रूपमें तोड़ दिया, इसका अर्थ यह नहीं कि हमने आश्रमको तोड़ दिया। जहाँ आश्रमवासी आश्रमके आदर्शोंका पालन करते हुए रहें वहीं आश्रम है। इस तरह कहा जायेगा कि हमारे आश्रमने व्यापक रूप ले लिया है। जीवंत संस्थाओंका ध्येय यह होना चाहिये कि उनमें जो लोग तैयार हों, वे सब उन्हें अपने जीवनमें मूर्त रूप दें। जब ऐसे बहुतसे लोग हो जाते हैं तब संस्था अपने असली रूपमें न रहे तो भी कोई नुक़सान होनेकी संभावना नहीं रहती।

इस तरह विद्यापीठका हर सेवक, जिसने विद्यापीठके आदर्शोंको जीवनमें उतारा है, उनकी सेवा करनेकी प्रतिज्ञा ली है और 'सा विद्या या विमुक्तये' के मर्मको उसके मामूलीसे मामूली अर्थसे लेकर

गहरेसे गहरे अर्थमें अच्छी तरह समझा है, वह ख़ुद ही चलता-फिरता विद्यालय बनकर गाँवमें चला जायेगा। वह ख़ुद वहाँ विद्यापीठके आदर्शोंका पालन करेगा और लोगोंको उन्हें समझानेके तरीक़े खोजेगा।

इस तरह बहुतसे सेवक गाँवोंमें फैल जायें और वहाँका अनुभव लें, उसके बाद संभव है कि गाँवोंमें ही एक मार्ग दिखानेवाली केन्द्रीय संस्था खड़ी हो जाये। हमारा विद्यापीठ ऐसी संस्था नहीं है। उसे गाँवोंका लगभग कोई अनुभव नहीं है।

मध्यबिन्दु चरखा होगा

ग्रामसेवकका मध्यबिन्दु चरखा रहेगा। इस चरखेके संदेशका पूरा मतलब मैं किसीके दिलमें उतार नहीं सका, क्योंकि मैं ख़ुद भी उसे स्पष्ट रूपसे समझ नहीं पाया था। लेकिन इस नौ महीनेकी यात्रामें मैंने जो कुछ देखा-परखा और सोचा, उससे — ख़ास करके दक्षिणकी यात्रामें — वह मुझे दीयेकी तरह स्पष्ट हो गया। गाँवोंमें एक व्यापक और मददगार उद्योगकी तरह और गाँवोंकी ग़रीबी दूर करनेवाले एक साधनके रूपमें चरखेको कैसे जमाया जाय, इस बारेमें मैं लगातार विचार करता रहा हूँ। अभी तक इस रूपमें चरखेकी साधना अच्छी तरह हुई ही नहीं है। यह बात अभी तक पूरी तरह हमारी समझमें नहीं आई है कि गाँवका बुनकर चरखेसे ही खड़ा रहेगा, मिलके सूतसे कभी नहीं। आज तो गाँवोंमें चरखा इतना ही जम पाया है कि आग्रहके साथ खादीका ही उपयोग करनेवालोंका जो वर्ग वहाँ बना है उसकी माँग पूरी करनेके लिए वह गाँवके कुछ आदमियोंके उद्योगके रूपमें रह जाय। लेकिन इतने छोटे कामके लिए चरखा-संघ जैसी बड़ी संस्थाकी हस्ती जरूरी नहीं। खादीके मूलमें यह कल्पना है कि खादी किसानोंके लिए अन्नपूर्णाका काम करनेवाली है, वह बड़ी संख्याके हरिजन जुलाहोंका प्राण है। कमसे कम चार महीने बेकार रहनेवाले किसानोंको खादी काम देती है। हममें से परिश्रम चला गया

है, स्वावलंबन चला गया है और हमारे भीतर आलस पैठ गया है। इस परिश्रम और स्वावलम्बनको हमें फिरसे अपने भीतर पैदा करना ही होगा; इस आलसको हमें छोड़ना ही होगा।

चरखेमें साम्यवाद

इस देशमें अगर हमें ख़ूनकी नदियाँ न बहने देनी हों, लोगोंको आजसे ज़्यादा हैवान न बनने देना हो, तो खादीका व्यापक सन्देश सबको समझाना चाहिये। साम्यवादके नाम पर आज जो कुछ चलता है वह साम्यवाद नहीं है। हिन्दुस्तानको पच सके ऐसा साम्यवाद तो चरखेमें गूँजता है। लोगोंको चरखेका ऐसा व्यापक सन्देश सुनानेका काम मेरा और चरखा-संघका था। लेकिन खादीका कार्य आज तक जिस ढंगसे चला है उसी ढंगसे अगर आगे भी चलाया जाय, तो वह व्यापक सिद्ध नहीं होगा। इस यात्रामें यह चीज़ मैं स्पष्ट देख सका हूँ। चरखेका संदेश लोगोंको समझाना और उसे मूर्त रूप देना यह ग्रामसेवकका मुख्य काम होना चाहिये।

गाँवमें जाकर सेवक स्वयं नियमित रूपसे कातेगा; जब कातता न होगा तब वह बसूला चलाता होगा, हथौड़ा चलाता होगा या हाथ-पैरकी दूसरी कोई मेहनत करता होगा। इस काममें वह बेगार नहीं टालेगा। वह अपनी कपास पैदा करने और साफ़ करनेके लिए ख़ुद ही मेहनत करता होगा। उसका एक मिनट भी बेकार न जाता होगा। नींदके आठ घंटोंके सिवाय बाक़ीके उसके सोलह घंटे काम ही काममें बीतते होंगे। मौजशौक़ करनेके लिए, गप्पें लड़ानेके लिए और आलसीकी तरह पड़े रहनेके लिए उसे फ़ुरसत ही नहीं होगी। वह लोगोंसे कहेगा कि मुझे यज्ञ करना है, शरीरका पोषण शरीरके कामसे करना है। मनके पोषणके लिए उसे मनकी शिक्षाकी ज़रूरत होगी। शरीरके काममें मेहनतका बँटवारा हो सकता है; लेकिन एक वर्ग शरीरकी मेहनत करता रहे और दूसरा मानसिक श्रम ही करता रहे, यह ठीक नहीं। इन नौ महीनोंमें मैंने खादीके मंत्रका जो जप किया

उससे मेरी समझमें यह बात आ गई है कि हमारे यहाँ जो आलस घर किये बैठा है वह अगर दूर न हो, तो अच्छीसे अच्छी सुविधायें मिलने पर भी हिन्दुस्तानके लोग भूखों ही मरेंगे। जो आदमी दो दाने खाता है, उसे चार दाने पैदा करनेका कर्तव्य स्वीकार करना ही चाहिये। ऐसा हो तो दूसरे करोड़ों लोगोंका भी हिन्दुस्तानमें पोषण हो सकता है। और अगर ऐसा न हो तो हिन्दुस्तानकी आबादी चाहे जितनी घटे, तो भी यहाँ भूखों मरनेवाला वर्ग रहेगा ही।

इसलिए विद्यापीठका जो सेवक गाँवमें बैठेगा उसके जीवनमें उद्योग अथवा श्रमका प्रधान स्थान होगा, कपासकी पहलीसे आख़िरी क्रिया तकका सारा शास्त्र वह घोल कर पी जायेगा। ग्रामसेवक अगर कपासकी हर क्रियामें एकरस हो जाय और उसीका विचार किया करे, तो उसमें से उसे जो सुगंध मिलेगी उसकी आज कल्पना नहीं की जा सकती।

इस प्रकार जो सेवक अपने काममें रस लेने लगेगा वह गाँवमें शिक्षकके नाते तो जायेगा ही, लेकिन सीखनेवाला बनकर भी जायेगा; वह नित-नई खोज और साधना करता होगा। मेरा ख़याल ऐसा नहीं है कि वह सोलहों घंटे खादीका ही काम करता होगा। लेकिन जितना समय उसने खादीकामके लिए तय किया होगा उतना उसमें देनेके बाद वह गाँवमें चल रहे उद्योगोंकी खोज करेगा। उनमें वह दिलचस्पी लेगा। वह ग्रामवासियोंके जीवनमें घुल-मिल जायेगा। लोग भले ही खादी या चरखेमें विश्वास न रखते हों, फिर भी वे ग्रामसेवकको अपना आदमी मानेंगे; और उनके जीवनके लिए कोई उपयोगी बातें उससे मिलें, तो लोग उन्हें स्वीकार करेंगे। ग्रामसेवक अपनी शक्तिसे बाहरकी बातोंमें हाथ नहीं डालेगा — जैसे लोगोंके क़र्ज़की बात। इसमें अगर वह पड़ेगा तो उसके उलझ जानेका डर रहेगा।

सफ़ाई ग्रामसेवकका दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। अपने रहनेके मकानको वह इतना साफ़-सुथरा रखेगा कि लोग उसे देखा ही करें।

लेकिन जैसे वह अपना आँगन साफ़ रखेगा वैसे ही लोगोंके आँगन भी साफ़ करेगा।

ग्रामसेवक वैद्य न बने

उसे गाँवमें वैद्य बननेका काम नहीं करना चाहिये। एक आश्रम देखनेके लिए मैं अपनी इच्छासे गया था। लेकिन वहाँ मैंने जो कुछ देखा उससे मैं चिढ़ गया। आश्रमके व्यवस्थापक और कार्यकर्ताओंको मैंने खूब डाँटा। मैंने उनसे कहा: "तुमने तो लोगोंको उलटे रास्ते लगा दिया है। तुम यहाँ एक बड़ा महल बनवा कर बैठे हो। यात्रियोंके लिए तुमने डाक-बँगला बनवा दिया है। उसमें दवाखाना खोल दिया है। दवा बेचनेवालोंसे मुफ्त दवायें लेकर और एक कंपाउन्डर रखकर तुमने घर घर दवा पहुँचानेका काम शुरू कर दिया है। तुम मुझे गर्वसे कहते हो कि रोज़ दूर दूरसे लोग यहाँ दवा लेने आते हैं और हर महीने १२०० बीमार दवा ले जाते हैं। सत्याग्रह आश्रममें जब तुम रहते थे तब वहाँ तुमने ऐसा मकान और ऐसा दवाखाना देखा था? मुझे अगर ऐसा महल बनवाना होता या दवाखाना खोलना होता, तो क्या मुझे पैसे देनेवाले लोग नहीं मिले होते? सत्याग्रह आश्रमके मकान भी मैं चाहता था उससे ज़्यादा महँगे बन गये, फिर भी इस महलकी बराबरी वे कभी नहीं कर सकते। इस तरह लोगोंको दवा मुहैया करना तुम्हारा काम नहीं है। तुम्हारा काम तो उन्हें स्वास्थ्य बनाये रखनेके नियम सिखाना है। वे मनमाना बरताव करें, गंदे रहें, घरों और गाँवोंको गंदा रखें और इसकी वजहसे जब वे बीमार पड़ें तब तुम उन्हें मुफ्त दवा दो—यह उनकी सेवा नहीं है। उनकी सच्ची सेवा यह है कि उन्हें संयम सिखाया जाये, स्वच्छता सिखाई जाये और तन्दुरुस्तीके नियम सिखाये जायें। मेरी सलाह मानो तो तुम इस मकानसे निकल जाओ और सामनेके झोंपड़ेमें जाकर रहो। यह मकान चाहो तो लोकल बोर्डको दे दो और इसमें उसे दवाखाना चलाने दो। तुम्हें याद होगा कि चम्पारनमें हमने दो या तीन ही

दवायें रखी थीं।" गाँवोंकी तन्दुरुस्तीका और सफ़ाईका यह सारा प्रश्न विद्यापीठको यानी ग्रामसेवकोंको हल करना ही होगा। गाँवके लोग चाहे जहाँ टट्टी-पेशाब करने बैठ जायें और गाँवको गंदा करें, तो उन्हें ऐसा करनेसे रोकना ही चाहिये।

इसके अलावा, ग्रामसेवकको हरिजनोंकी सेवा करनी होगी। उसे गाँवमें रहनेवाले हरिजनोंको अपने घर बुलाना चाहिये। ऐसा करनेसे अगर उसे गाँवमें रहनेकी जगह न मिले, गाँवमें रहकर वह हरिजनोंकी सेवा न कर सके, तो उसे हरिजन बस्तीमें रहना चाहिये।

शिक्षामें अक्षर-ज्ञानका स्थान

अब हम शिक्षाके सवालको लें। १९२२ में मैंने जो बालपोथी लिखी थी, वह मेरे मनसे लोप नहीं हुई है। उसमें कही गई बातें मैं तुम्हारे दिलमें उतार नहीं सका, लेकिन वह अभी तक मेरे पास जैसीकी वैसी है। वह बालपोथी आजकी अनेक पाठचपुस्तकोंमें एक और पुस्तकको बढ़ानेवाली नहीं है, लेकिन वह इन सबकी जगह लेनेवाली है। वह बालपोथी अब मौजूद है या नहीं, यह भी मैं नहीं जानता। लेकिन अगर वह न बची हो, तो मैं उसे दुबारा लिख सकता हूँ। बात तो यह है कि पहले बालकोंकी आँखें काम करेंगी, कान काम करेंगे, जीभ काम करेगी। उन्हें इतिहास, भूगोल वग़ैरा जो भी सिखाना होगा शिक्षक मुँहसे ही सिखायेगा। उसके बाद वे बारहखड़ी पढ़ेंगे। और फिर जब उनका हाथ चित्र बनाने पर बैठ जायगा तब वे बारहखड़ीके अक्षरोंके चित्र बनायेंगे, मक्खीकी टाँग जैसे भद्दे अक्षर नहीं लिखेंगे। यह प्रयोग तुम करो तो पूरी तरह करना चाहिये। अगर तुम्हें लोगोंकी बुद्धि तक पहुँचना हो, उसे जगाना हो, तो मुझे लगता है कि इसके लिए मेरा रास्ता सबसे आसान है। मेरे बचपनका अनुभव आज भी मेरी स्मृतिमें ताज़ा है। 'माणभट्ट' से जब मैंने महाभारतकी कथायें सुनीं उस समय मैं बाल-वर्गमें पढ़ता हूँगा। रामायणकी कथायें मैंने सुनीं उस समय मैं पहले

या दूसरे दरजेमें रहा हूँगा। लेकिन इस वजहसे वे कथायें समझनेमें मुझे कठिनाई नहीं होती थी।

हम लोगोंको भुलावेमें न डालें। अगर हम उनसे कहें कि अक्षर-ज्ञानके बिना शिक्षा नहीं मिल सकती, तो वे उलटे रास्ते जायेंगे। इस प्रकार ग्राम-सुधारकी मेरी इस कल्पनामें बड़ोंको और बच्चोंको मुँहसे ज्ञान देनेकी बात है; लेकिन इसका कोई यह अर्थ न करे कि मैं अक्षर-ज्ञानके ख़िलाफ़ हूँ। मैं तो सिर्फ़ अक्षर-ज्ञानको उसके उचित स्थान पर रखना चाहता हूँ, उसका सदुपयोग करना चाहता हूँ।

ग्रामसेवक मौजशौक़का जीवन बिता कर लोगोंको यह ज्ञान नहीं दे सकता। उसके पास औज़ार होंगे, बसूला होगा, कुदाली होगी; किताबें उसके पास कम ही होंगी। किताबें पढ़नेमें वह अपना कमसे कम समय ख़र्च करता होगा। लोग जब उससे मिलने आयेंगे तब उसे बिस्तर पर पड़े पड़े किताबोंके पन्ने उलटते नहीं देखेंगे, बल्कि औज़ारोंसे काम करते देखेंगे। मनुष्य जितना खा सके उससे ज़्यादा पैदा करनेकी ताक़त ईश्वरने उसे दी है। कमज़ोरसे कमज़ोर आदमी भी इतना पैदा करेगा। इसके लिए वह अपनी बुद्धिकी शक्तिका उपयोग करेगा। ग्रामसेवक लोगोंसे कहेगा कि मैं आपकी सेवा करने गाँवमें आया हूँ, आप मुझे पेट भर खानेको दें। मुमकिन है कि लोग उसका तिरस्कार करें। लेकिन इसके बावजूद उसे गाँवमें टिके रहना होगा। किसी गाँवमें सनातनी हिन्दू अगर उसे खाना न दें, तो हरिजन तो देंगे ही। उसने अगर अपना सब-कुछ अर्पण कर दिया हो, तो उसे हरिजनोंसे खाना लेनेमें शरमानेकी ज़रूरत नहीं।

अगर गाँवके लोग ग्रामसेवकको खाना देते हों, तो उसे अपनी तैयार की हुई चीज़ोंको बेचनेकी झंझटमें नहीं पड़ना चाहिये। लेकिन जहाँ लोगोंका सहयोग न मिले वहाँ वह कोई भी धन्धा करके उससे अपना गुज़ारा चलायेगा। शुरू शुरूमें तो वह समाजके पैसेसे गाँवमें अपना गुज़ारा करेगा, इसलिए उसे स्वावलंबी होनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये।

गोरक्षाका सवाल

अभी गोरक्षाका — ढोरोंका सवाल बाकी है। यह बहुत बड़ा प्रश्न है। हम अभी तक चमड़ा कमाने और उसे रंगनेकी समस्या हल नहीं कर पाये हैं। गायका फिरसे उद्धार करने — उसकी हालत सुधारनेका तरीक़ा तो हमें सूझ गया है, लेकिन उससे सम्बन्ध रखनेवाले उपाय कैसे किये जायें यह अभी तक अच्छी तरह समझमें नहीं आया है। भैंसको बढ़ानेका मतलब है गायको मारना। लेकिन इसकी चर्चा हम बादमें करेंगे।

आत्माकी शक्ति एक बार अपना काम करने लगी कि फिर उसे कोई रोक नहीं सकता। यह बात मैं अपने अनेक वर्षोंके अनुभव-सिद्ध विश्वाससे कहता हूँ। यह बात ऐसी नहीं है जो इन आँखोंसे प्रत्यक्ष देखी जा सके। फिर भी मैं यह कहता हूँ कि वह मुझे आँखोंसे देखने जैसी स्पष्ट लगती है।
